लिखने की महत्त्वाकांक्षा नहीं है। बस जो कुछ करना चाहता हूँ, या कहना चाहता हूँ उसे उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा हूँ। कला की ओर ध्यान नहीं दिया। श्रेष्ठ लेखक बनने की परवाह नहीं। सरकारी पुरस्कार पाने का लोभ नहीं। हाँ, जो कुछ कहना चाहता हूँ स्पष्ट नहीं हो पाता। यह मेरी अभिव्यक्ति की दुर्बलता है। दिल में तड़पन और रगों में जिस पीड़ा का अनुभव कर रहा हूँ, उसे प्रकट नहीं कर पा रहा हूँ।

—रमानाथ त्रिपाठी

Mar/1966

न केवल रोचक तथा आकर्षक पुस्तकें
इस माला के अन्तर्गत प्रकाशित हों,
प्रत्युत उपयोगी तथा प्रेरणात्मक
साहित्य भी सस्ते दामों में पाठकों
को मिले, यही हमारा उद्देश्य है।

नटराज पॉकेट बुक्स

रमानाथ त्रिपाठी

एक

आज चतुर्थी हो गई थी और हाथ के कंगन छोड़ दिए गए थे।

लेटने की तैयारी के साथ ही मेरी छाती धड़कने लगी—कहीं आज सुहाग-रात न हो।

घर की स्त्रियाँ मेरा स्वभाव जानती हैं, इसलिए पहले से कोई सूचना नहीं देंगी ताकि मैं भड़क न जाऊँ। परिवार और पहचान के लोगों से दूर यदि भेंट हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं; किन्तु अपनी माँ, भाभी और बहिन के सामने प्रातःकाल मेरे नेत्र कैसे उठ सकेंगे! हे भगवान्, यहाँ सुहागरात न हो। यहाँ से जब लखनऊ पहुँच जाऊँ, तब तो पूरे रोमांस के साथ दिन बीतेंगे। किन्तु क्या मैं सचमुच अनदेखी उस नवयौवना से मिलना नहीं चाहता था, जो कि अब मेरी हो गयी थी; जिसकी माँग का सिन्दूर और सुहाग की चूड़ियाँ मेरे स्वामित्व के अधिकार का प्रदर्शन करती थीं? ऐसा ही था तो मैंने खिड़की बन्द करते समय साँकल क्यों न चढ़ा दी थी?

यह कोठरी घर से कुछ एकांत में पड़ती थी। इसका सम्बन्ध खिड़की द्वारा एक ओर घर के भीतरी भाग से था तो दूसरी ओर एक द्वार बाहर खंडहर की ओर खुलता था।

गुलगुले बिछौने पर बैठते हुए ब्याह में मिली रेशमी रजाई अपने ऊपर खींच ली। कलाई घड़ी में टार्च से देखा, रात के दस बज चुके थे। अपने मुँह पर उजाला कर शीशे में देखा। मुझे अपनी स्वप्निल आँखों और चमकते हुए चौड़े माथे पर गर्व रहा है। मेरी आँखों में नींद और थकावट की खुमारी थी। लम्बी पलकें झुकी पड़ती थीं। घुँघराले बालों की लटों में अभी भी कुछ धूल-कण लगे थे। पान का रस पतले ओठों के कोनों में कुछ

फैल सा गया था। तौलिये से ओठ, मुँह और बाल रगड़ के साथ पोंछ कर मैं तकिये पर लुढ़क गया। तकिये से रातरानी की मधुर-सुवास आ रही थी। मुझे इसकी सुरभि बेहद पसन्द है। मैं अपने पर्स में रखे हुए नोटों में प्रायः इसे लगा लेता हूँ।

किवाड़ बन्द थे, किन्तु बाहर की ओर खुलने वाली खिड़कियों से तेज ठंडी हवा के झोंके आ रहे थे। मुँह छोड़ कर सारी देह को रजाई से दबा कर मैं लेट गया। रेशमी रजाई की गरमाहट महसूस हुई। तकिये की सुगंध और पान के मादक-स्वाद का उत्तेजनात्मक अनुभव करता हुआ मैं धीरे-धीरे नींद में डूबने लगा।

नींद की बेहोशी में किसी को कुछ कहते सुना—'मिठाई-पान।' इसके पश्चात् घोर निद्रा में लीन हो गया, कितनी देर तक—पता नहीं।

वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के पूर्व मैं सारी रात सपने देखा करता था। अब भी देखता हूँ किन्तु उतने नहीं। इन सपनों का सम्बन्ध मेरे अतीत शिशु जीवन से होता है। कुछ स्थान और कुछ व्यक्ति मुझे बिल्कुल उसी रूप में दिखायी देते हैं, जिस रूप में उन्हें बचपन में देखता था। मैं देश-काल भूलकर पुनः अपने अतीत में रम जाता हूँ।

इस रात को तो और भी अधिक स्वप्न दिखाई दिए। मेरा गाँव यमुना के बिल्कुल किनारे एक ऊँचे टीले पर बसा है। कहते हैं कि मेरे जन्म से कई वर्ष पूर्व भयंकर बाढ़ आई थी, तब समूचा गाँव टापू बन गया था। यमुना के किनारे मील दो मील तक टीले और घाटियों वाली भूमि बेर, झरबेरी, बबूल और करील के पेड़ों से आच्छादित है। आज ही प्रातःकाल चतुर्थी-कर्म समाप्त हो जाने पर दस मील की दूरी पर स्थित एक अन्य ग्राम को हम सब को जाना पड़ा था। वहाँ हमारे एक चाचा पर आकस्मिक आपत्ति आ गई थी। ऊँचे-नीचे सँकरीले-पथ पर साईकिल दौड़ा कर शाम तक लौट तो आया था, किन्तु जाँघें दर्द से फटी जा रही थीं। इसीलिए आज गूढ़ निद्रा का अनुभव हो रहा था।

शरीर बेसुध था, किन्तु यमुना के इन कगारों और टीलों ने स्वप्न-लोक में मेरे अतीत को भर दिया था।

अपने जीवन के दो कार्यों को मैं प्रायः स्वप्न में देखता हूँ। पहला कार्य घोड़े की सवारी और दूसरा खंजड़ी बनाना।

गर्मी की ऋतु में किसान पशुओं को मुक्त रूप से चरने छोड़ देते हैं। यमुना के कगारों पर मस्ती के साथ घूमते हुए घोड़े जंगली बन जाते हैं। इनको पकड़ना बड़ा कठिन है। मैं देख रहा हूँ—हलका अँधेरा सा छाया है। घोड़े चर रहे हैं। मैंने एक घोड़ा चुन लिया। ये पशु भी बड़े चतुर हैं; कान खड़े कर इधर-उधर देखते रहे, हिन-हिन करते रहे, फिर इन्होंने अकस्मात् पूर्ण-वेग से दौड़ना प्रारम्भ किया और आधा मील दूर जाकर एक ऊँचे टीले पर चढ़ कर चरने लगे। मैं अपने साथी के साथ केवल एक मिनट में उस टीले के पास पहुँच गया—आश्चर्य ! रस्सी का फन्दा डालकर दो घोड़े पकड़ लिए। यज्ञोपवीत तोड़कर मुँह बाँधकर एड़ लगा दी। तीर-कमान हाथ में। घोड़ा पूर्ण वेग से छूट रहा है। टापों की ध्वनि यमुना के कगारों में गूँज रही है। जंगल पर जंगल पार हो रहे हैं। घोड़े पर बैठे-बैठे जाँघें दर्द करने लगीं। घोड़े ने अकस्मात् मुझे फुटबाल-सा हवा में उछाल दिया। ए''''ए''''गिरा'''।

आँख खुल गई। खाट पर पड़ा था। जाँघें अवश्य दर्द कर रही थीं।

दूसरा दृश्य शुरू। हाथ में फूटे घड़े का मोहरा। बबूल की सिघड़ी के रस से कागज चिपकाया जा रहा है। सूखने पर खंजड़ी तैयार। दो अँगुलियों से पहली थाप पड़ी ही थी कि पीछे से एक थप्पड़ पड़ा।

'दुष्ट ने सब की सब पोथियाँ फाड़ कर नष्ट कर दीं। खबरदार, अब बस्ता छुआ तो हाथ काट डालेंगे।''''क्रोधी पिता चले गए।

इस बार जरा देर से नींद खुली। मुस्कराया, चौबीस वर्ष का हो गया हूँ, फिर भी खंजड़ी मढ़ने के सपने देखता हूँ। ओफ, नादानी में न जाने कितनी प्राचीन पोथियाँ नष्ट कर दी होंगी। कुछ माँ ने गला कर उनसे टोकरियाँ बना लीं। अब की बार बची-खुची पोथियाँ उठा ले जाऊँगा, शायद कुछ सामग्री हाथ लग सके। आगे न सोच सका। फिर तन्द्रा आ गई।

जाँघों का दर्द कुछ और बढ़ा, फिर नींद खुली। पैताने की ओर लगा,

जैसे किसी की चूड़ियाँ खनक गई हों। सोचा भ्रम हुआ है। धीरे-धीरे फिर झपकी आ रही थी कि फिर चूड़ियाँ खनकीं। बिना हिले-डुले उस दिशा में देखा। अन्धकार के कारण कुछ दिखाई न दिया। बैठते हुए एकदम हाथ बढ़ाया तो किसी की कोमल कलाई मुट्ठी में आ गई। खींच कर खाट पर बिठा लिया।

जो आशंका थी वही हुआ। साँसों की गति तीव्र हुई। कहीं भाभियाँ छिपी हुई आहट न ले रही हों, इसलिए कुछ बोला नहीं। अँधेरे में ही टटोल कर मेज पर पान और मिठाई रखे हुए पाए। भाभी रख गई होंगीं।

लेटने का आदेश देकर फुसफुसाते हुए पूछा—'तुम्हें यहाँ कौन कर गया ?'

'जिज्जी।'

'क्यों आयीं तुम ?'

'..............।'

'मिठाई खाओगी ?'

'न।'

'पान खाओगी ?'

'................।'

एक पान उठा कर उसके ओठों की ओर बढ़ाया तो उसने अपने हाथ में लेकर मेरे ओठों से लगा कर कहा—'पहले आप।'

टार्च जलाकर मुँह देखने की इच्छा हुई। हाथ काँपने लगे, पता नहीं कैसी हो ? अभी तक मुँह नहीं देखा था। भाँवरों के समय गोरी कलाइयाँ कमल-कोरक सी उँगलियाँ अच्छी लगी थीं। मण्डप के नीचे उसके महावर से रँगे पाँवों के नीचे से पत्थर निकालने की क्रिया करते समय मैं सिहर उठा था। उसी प्रकार जब पण्डितजी ने हाथ का अँगूठा पकड़ने के लिए कहा तो मेरे हृदय की धड़कन तीव्र हो गई थी। अँगूठे को अपनी चुटकी में दबाते समय मैंने अनुभव किया कि उसके अँगूठे की नस में रक्त का प्रवाह तीव्र गति से हो रहा है। जाड़े में भी मुझे लगा कि उसका अँगूठा हल्का-सा भीगा हुआ है।

विवाह के समय पण्डितजी ने प्रतिज्ञाएँ कराई थीं। उन प्रतिज्ञाओं का आज के युग में मूल्य कम हो गया है। मैं वैसे ही आलोचक स्वभाव का हूँ, अतएव पहले तो व्यंग-पूर्वक देखता रहा। पण्डित जी ने संस्कृत में आदेश दिया। वे बोले, 'तुम संस्कृत जानते हो इसलिए संस्कृत में ही आदेश दूंगा। कन्या अभी तुम्हारे दक्षिण-भाग में बैठी है, वह तुम्हारी वामांगी तभी होगी जब तुम प्रतिज्ञा करो कि······

वामांगी ! प्रतिज्ञाएँ ! ! ······तो यह निरीह कन्या कुछ ही मिनट में मेरी बाईं ओर बैठकर जीवन-भर के लिए मेरी 'चरणदासी' हो जायगी ? भीतर-ही-भीतर लगा कि गला रुँध आया है, नेत्र तरंगित होकर रह गए। वेद-मन्त्रों की पवित्रता की अनुभूति हुई। मंत्रों की गूँज, यज्ञ का धूम्र, कन्या के पवित्र-वस्त्रों की क्वाँरी गन्ध···मैं अभिभूत हो उठा। क्या इन्हीं मन्त्रों के साथ आज से सहस्रों वर्ष पूर्व हमारे पुरुखों ने भी यही प्रतिज्ञाएँ नहीं की होंगी ? क्या गार्गी, सावित्री, दमयन्ती, सीता आदि ने भी अपने भर्त्ताओं से ये प्रतिज्ञाएँ न कराई होंगी ?

मैं कहाँ बहक गया। अब तो कन्या पूर्ण-रूप से वामांगी होकर मेरी बगल में ही लेटी हुई है, जिसका गरम-गरम शरीर मेरे स्पर्श से दूर नहीं है। इस प्रकार मौन धारणकर क्या मैं उसका अपमान नहीं कर रहा हूँ ? टार्च का बटन टीपते ही उसने अपनी लम्बी-पतली उँगलियों से सारा मुँह ढँक लिया। बड़ी कठिनाई से उँगलियाँ हटायीं, मुँह देखा। टार्च बुझ गई और साथ ही धप से मन भी बुझ गया। वह कुरूप न थी, किन्तु चेहरा ऐसा था, जिस चेहरे की लड़कियों को मैं प्यार नहीं कर सकता। शंकित होकर पूछा—

'कितने वर्ष की हो ?'

'इक्कीस वर्ष की।'

थोड़ा-सा हँस पड़ा। वह बोली, 'क्यों ?'

'तुम्हारे घर के लोगों ने बताया था कि तुम चौदह वर्ष की हो।'

कई मिनट तक दोनों मौन और निश्चल रहे। बाहर से ठण्डी हवा के झोंके आ रहे थे। मैं कितने ही जाड़े में मुँह बाहर निकालकर सोने का

अभ्यस्त हूँ। वह रजाई के भीतर मुँह छिपाकर सोने की अभ्यस्त जान पड़ी। मुझे इस आदत से चिढ़ है।

मुझे लगा कि अब मैं समस्त जीवन सुखी न रह सकूँगा। मैं प्रथम भेंट में ही व्यक्ति को पहचान लेता हूँ कि इसके साथ पट सकेगी अथवा नहीं। यह प्राणी साथी-किरायेदार न था कि साथ छोड़कर किसी और को साथी बना लूं। मित्र न था कि इसे छोड़ किसी और को मित्र बना लूं। यह जैसी है, वैसे ही रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। किसी प्रकार मुक्ति नहीं, केवल एक मृत्यु को छोड़कर। ईमानदारी से कहूँगा, मैंने कामना की कि किसी प्रकार हम दोनों में से अनायास ही कोई एक जीवन से मुक्त हो जाय तो अच्छा है।

स्त्रियाँ मन के भाव तुरन्त पढ़ लेती हैं। वह मेरी कोहनी टटोलकर डरती लड़खड़ाती बोली, 'मुझसे नाराज हो?'

मेरी दायीं आँख से एक आँसू बायीं आँख से मिलता हुआ तकिये पर टपक पड़ा। झट से पोंछकर गला साफकर बोला—

'नहीं तो। तुम मुझे बहुत पसन्द हो। लेकिन तुम कर क्या रही हो?'

'आप बड़े दुर्बल हैं।'

'बाँह टटोलकर जाना?'

'वैसे भी आपको दुखंडे के झरोखे से देखा था। भाँवरों के बाद नाई आपका उबटन कर रहा था।'

'जिस तरह तुम मेरी बाँह टटोल रही थीं, मेले में इसी तरह कसाई जानवरों की खाल टटोलकर पता लगाते हैं कि''''।'

उसने झट करवट बदलकर मुँह घुमा लिया।

'अच्छा भाई, नाराज न हो। होटल का रूखा-सूखा खाता रहा हूँ। तुम अपने हाथ की रोटियाँ खिलाओगी तो चर जाऊँगा।'

मैंने उसका मुंह अपनी ओर घुमाकर केवल उसे प्रसन्न करने के लिए प्यार का मात्र एक चिह्न अंकित किया—'ऐं यह क्या, तुम रोई हो?'

'माँ की याद आती है।'

बाप-माँ का घर छोड़कर आई हुई इस परायी कन्या ने सुहागरात के

बारे में क्या-क्या सोचा होगा। पति से कैसी-कैसी आशा लेकर आई होगी। मैंने उसे क्या दिया ? प्रथम भेंट में दोनों के आँसू क्या भावी अमंगल की सूचना नहीं देते ?

उसके सिर पर दयापूर्वक हाथ फेरने लगा। वह मेरे वक्ष में मुँह छिपाकर लेटी रही। मैं अपने ही विचारों में खोया हुआ उसकी माँसल बाँहों पर हाथ फेरता रहा।

'नींद आ रही है ?'

'नहीं तो, इतनी दूर सायकिलिंग करने से जाँघें दुख रही हैं।'

सोचा था शायद द्रवित होकर पैर दबा दे। कम-से-कम मैं स्वामित्व का अनुभव ही कर लूँ। वैसी इच्छा पूरी न हुई।

....शायद रात्रि के अन्तिम प्रहर में हम दोनों नींद में बेसुध हो गए। अकस्मात् ही हम दोनों चौंक गए। पास के किसी घर में कोई किसान गँडासे से कुट्टी काटने लगा था। एकाध चक्कियाँ भी चलने लगी थीं। पशु गले की घण्टियाँ बजा रहे थे। वह उठकर बोली—

'हाय, मैं घर के भीतर कैसे जाऊँ ?'

'क्यों ?'

'सब जाग गए होंगे। मुझे जगाया क्यों नहीं ?'

'मैं भी तो सो गया था।'

'आज लखनऊ चले जाओगे ?'

'हाँ।'

'मुझे ले चलोगे ?'

'न।'

'वह तो मैं सुन चुकी हूँ, जिद्दी हो। जो एक बार तय कर लेते हो, बदलते नहीं। मैं तुम्हारे पैर छूती हूँ, मुझसे कभी जिद न करना।'

'तुमने पैर छुए तो नहीं।'

उसने पैर नहीं छुए, मेरे सिर पर हाथ रखा। मैंने उसकी हथेली अपने ओठों पर रखकर सद्भावनामात्र प्रकट की। वह धीरे-धीरे भीतर चली गई।

बिस्तर पर उसके शरीर की गर्मी अभी भी थी। तकिए में बालों की सुगन्ध भर गई थी। रजाई से मुँह ढँका तो उसमें भी किसी कीमती इत्र की गन्ध के साथ पान-सुपारी की गन्ध भी प्रतीत हुई। शरीर थका था। फिर खुमारी आने लगी। अकस्मात् रजाई फेंककर उठ खड़ा हुआ। चाहे मैं रात भर ही क्यों न जगा होऊँ, सूर्योदय के समय खाट पर नहीं रह सकता।

प्रातः भ्रमण से लौटा तो कौमार्य-व्रत भंग होने की ग्लानि अनुभव कर रहा था। लगता था जैसे सभी व्यक्ति मेरा मुँह देखकर रजनी का रहस्य पढ़ लेना चाहते हैं। लज्जा से आँखें झुक गईं। चुपचाप कोठरी में घुस गया। वहाँ का काण्ड देखकर विस्मित रह गया। घर की लड़कियाँ चारपाई पर टूट पड़ी थीं। रजाई और तकिया फेंका जा रहा था। मैंने नेत्र झुकाए ही कड़ककर पूछा, 'क्या हो रहा है?'

मुझे देखकर सबकी-सब खिलखिलाकर भाग गयीं। एक कहती गई—'भाभीजी के हार के नग खो गए हैं, सो ढूँढ रही थी।'

झुँझलाहट हुई, हँसी भी आई—'बड़ी दुष्ट हैं ये!'

गुनगुने पानी से स्नान किया तो तबियत हल्की हुई। नाश्ता किया। चलते समय माँ ने दही-अक्षत से तिलक किया। पिता द्वार पर दौड़कर देखने लगे, कोई खाली घड़े लिये हुए तो नहीं जा रहा है। वे मंगल-यात्रा के लिए जोर-जोर से संस्कृत-छन्दों का पाठ करने लगे। घर के सभी लोगों के स्नेहाशीर्वाद से अभिषिक्त होकर चलने लगा तो माँ ने पूछा—'बहू को लखनऊ भेज दूँ?'

'न।'

'फिर विदा...?'

'यहीं से करा देना।'

बाहर कुएँ पर दीनू मिश्र स्नान कर रहे थे। संस्कृत-छन्दों का अशुद्ध उच्चारण करते हुए बड़े प्रेम से अपने ऊपर पानी उड़ेल रहे थे। शरीर पर पड़ा हुआ मोटा यज्ञोपवीत काला पड़ गया था। धोतियाँ भी महीनों का पसीना और धूल सोखकर काली पड़ गई थीं। परन्तु मिश्रजी, बिना धुला कपड़ा पहने और स्नान किये हुए अन्न का दाना भी मुँह में नहीं डाल सकते।

कुसंस्कार। मुझे हँसी आई। उनके इस मोटे यज्ञोपवीत को देखकर वह दिन भी याद आया जब इनके गले में प्रथम बार पाँच ब्राह्मणों ने हल्दी से रँगा हुआ सूत डाला था। पंडित ने गायत्री मन्त्र-दान के पूर्व आदेश दिया कि तुम्हारे आचार्य जो कुछ कहें दुहराते जाना। आचार्य ने खंड-खंड करके मन्त्र कान में कहा, मिश्रजी दुहराते गए। अन्त में उन्होंने मिश्रजी के सिर पर हाथ रखकर कहा—'आयुष्मान् भव।' मिश्रजी ने भी उनके सिर पर हाथ रखकर कहा—'आसमान भी।' मुझे उस दिन बड़े ज़ोर की हँसी आई थी; आज भी हँसी न रोक सका। मिश्रजी मेरे बालसखा थे, किन्तु अब मेरी शिक्षा से आतंकित होकर मुझसे बात करने का साहस न करते थे। मिश्रजी भले ही कुपढ़ हों, किन्तु उनकी घनी चोटी, प्रशस्त-भाल, यज्ञोपवीत तथा व्यवहार बातचीत में एक विचित्र-सी अकड़—इनसे उनके ब्राह्मण होने का तुरन्त पता लग जाता था।

कुएँ के पास ही तो तीन धानुक स्त्रियाँ अपने मैले घड़े लिए बैठी थीं। शत छिद्रों से युक्त उनके मैले वस्त्र मिश्रजी के वस्त्रों से कई गुना अधिक मैले और बदबूदार होंगे। मिश्रजी नित्य नहाते-धोते तो हैं, किन्तु ये...

दया आई, मनुष्य मनुष्य में इतना भेद क्यों? ब्राह्मण-देवता कुएँ पर हैं तो ये तब तक चढ़ नहीं सकतीं।

बैठी हुई स्त्रियों में एक को अपनी ओर बुद्धुओं की तरह ताकते देखकर मैंने उसे ध्यान से देखा—अरे, यह तो रमरतिया है। छाती ढलक गई है, नथुनों में नाक भरी है। मुँह से साँस लेती है, जिससे गन्दे दाँत बाहर निकले हुए हैं। एक घिनौना-सा लड़का पीठ पर लटका है, एक गोद में बैठा है। शायद एक पेट में हो।

यह वही रमरतिया है न, जो आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व लगभग तेरह-चौदह वर्ष की रही होगी। मैं तब छोटा था। एक दिन घर की दीवाल फाँदकर खेतों की ओर भाग गया था। घर के लोग जेठ की दुपहर में खेलने नहीं जाने देते थे, इसलिए भाग आया था। गरम घहराती हुई लू और तवे-सी जलती हुई धरती पर फुदकता-दौड़ता दूर बरगद की घनी छाया में पहुँच गया था। यहाँ बड़े-बड़े कार्यक्रम हुआ करते—पतंगबाज़ी, बरगद की जटाओं का

झूला, लपोडंडा आदि। बरगद की छाँह में पेड़ के नीचे दो किशोर गडरिये बैठे हँस रहे थे। मैं उस समय यह तो न समझा कि ये छाया में एक ओर बैठी रमरतिया की ओर कैसे इंगित कर रहे हैं, किन्तु मुझे लगा कि ये जो कुछ कर रहे हैं, वह भले लोगों का काम नहीं है। रमरतिया खड़ी हुई मुस्कराई, लजाई। मैली कमीज़ के नीचे पसलियों के ऊपर नुकीले उभार को मैंने लक्ष्य किया। मेरा शिशु-मन चकित था। ये दोनों किशोर उसी उभार की ओर संकेत कर रहे थे। एक ने पास जाकर न जाने क्या कर दिया कि वह वक्ष पर दोनों बाहें रखकर, 'ओह' चीखकर बैठ गई। मैं पतंग उड़ाने में लग गया। कुछ देर बाद मुड़कर देखा—तीनों फूटे मन्दिर की ओर जा रहे थे।

अब उनकी हरकतें मुझे स्पष्ट हुई हैं। शायद ये हरकतें फिर दुहराई जायें तो मेरे लिए उत्तेजना का विषय हों, किन्तु आज मैं सोच रहा हूँ कि रमरतिया जैसी बालिकाएँ सीता या शकुन्तला न हो सकीं तो जिम्मेदारी किस पर? इस प्रकार के अभिसार-व्यभिचार में यदि वे अपने यौवन के पवित्र पुष्प की सुगन्ध को दुर्गन्ध बना लेती हैं, तो क्यों? उन्हें शिक्षा और संस्कृति सेवंचित रखने वाले ये मोटे जनेऊधारी मिश्र जैसे ब्राह्मणो! सावधान!

बैलगाड़ी आगे बढ़ती गई। धानुक के गन्दे घरौंदे जैसे घर बगल से निकलने लगे। मुर्गियाँ और सूअर घूम रहे थे। चारों ओर टट्टी आदि की दुर्गन्ध उठ रही थी। मनसुखा धानुक घर के सामने खड़ा क्लारनेट पर किसी फिल्मी धुन का अभ्यास कर रहा था।

मैंने गाड़ी हाँकने वाले ब्राह्मण महोदय से पूछा—

'तुम लोग कब तक छुआछूत मानते रहोगे?'

'जब तक भगवान् ऊँची-नीची जातियाँ पैदा करता रहेगा?'

'भगवान् थोड़े ही कहता है कि छुआछूत मानो।'

'शास्त्र तो कहते हैं। खैर जाने दो। ये कितने गन्दे रहते हैं, देख तो रहे हो। तुम बड़े अंग्रेजीदाँ बनते हो। अभी इनके घर में खड़े कर दिए जाओ, तो एक बूँद पानी न पी सकोगे।'

'गन्दे तो गरीबी के कारण हैं।'

'गरीबी से यह बात नहीं है। दीनू मिसुर भी तो गरीब है। बेचारा कटकटाते जाड़े में नहाकर दूसरों का हल जोतने जा रहा है। दोनों समय चूल्हा तक तो जलता नहीं। ये धानुक लोग तो खुद-के-खुद जोतते हैं, मजदूरी भी करते हैं, स्त्रियाँ नाड़ा छीनकर कमाती हैं। इन्होंने तीन-तीन बैंड खरीद लिए हैं, सहालग के दिनों में चाँदी काटते हैं। दीनू तो इनके पासंग के बराबर भी नहीं है।'

'तो फिर क्या कारण है ?'

'अपने-अपने संस्कार हैं।'

'इन्हें भी संस्कार क्यों नहीं देते ?'

'यहाँ अपने ही लाले पड़े हैं। संस्कार कौन देता फिरे ! तुम सरतारे हो सो खूब संस्कार फूँकते फिरो। सौ बात की एक बात कि जिन्हें ऊपर उठना है, वे खुद क्यों नहीं चिन्ता करते ?

गाड़ीवान ब्राह्मण देवता ने चकचक की ध्वनि करते हुए बैलों की पूँछ मरोड़ दी। बैल गले के घुँघरुओं को बजाते हुए दौड़ने लगे। मैं भी गाड़ी पकड़ने की चिन्ता करता हुआ मौन हो गया।

दो

लखनऊ में छितवापुर रोड पर एक कमरा किराये पर ले रखा था। सारा शरीर टूट रहा था, किन्तु जाते ही कमरे की सफाई और सजावट में लग गया। शाम को होटल में भोजन किया और सिल्ची की दुकान से पान खाकर कुछ तृप्ति का अनुभव करता हुआ चारपाई पर आकर लेट गया।

ब्याह में मिला हुआ रेडियो खोल दिया। सन्ध्या मुखर्जी का मीठा स्वर गूँजने लगा।...'अब रात के सवा आठ बजे हैं; श्री देवकी नन्दन पांडे से हिन्दी में समाचार सुनिए....।'

कुछ सुना, कुछ नहीं सुना। ज्ञान ने मेरे कमरे में प्रवेश करते ही कहा,

'अरे ब्याह करने के बाद रेडियो लाए, घरवाली कहाँ छोड़ आए ?'

'आइए ज्ञानजी !'

'अरे भाई, मेरे आते ही समाचार समाप्त हो गए। कुछ एकाध सुनाओ तो।'

'दिल्ली के रामलीला मैदान में नेहरूजी का भाषण हुआ। उन्होंने सांप्रदायिकता की निन्दा की।'

'यह कोई महत्त्वपूर्ण खबर नहीं।'

'क्यों ?'

'क्योंकि नेहरूजी को सांप्रदायिकता केवल हिन्दुओं में दीखती है—तारासिंह के पन्थी अन्दोलन, मुसलमानों की हरकतों और ईसाइयों के उत्पातों के समय वे चुप रहते हैं।'

'अच्छा दूसरी खबर है कि पाकिस्तान ने भारत की सीमा पर आक्रमण कर कई सौ गज भूमि पर अधिकार कर लिया है। अच्छा, ज्ञान बाबू ! पाकिस्तान ऐसे उत्पात करता ही रहता है और हमारी सरकार कुछ नहीं करती ?'

'करती कैसे नहीं ! नेहरूजी कड़ा विरोध-पत्र लिखवाकर सैकड़ों बार भिजवा चुके हैं····।'

'तुम तो नेहरूजी से बहुत चिढ़े हो।'

'बहू को देखा है ? कैसी है ?'

'ठीक है, जैसी चार दूसरी बहुएँ होती हैं।'

'तब ठीक है। मुझे भी बताना गार्हस्थ्य सुख कैसा है ? अच्छा जान पड़ा तो मैं भी रस लूँगा। अच्छा नमस्कार।'

मैंने कहा मिठाई खाते जाइए किन्तु ज्ञान बाबू अपनी ही धुन में मस्त चले गए।

रेडियो बन्द कर दिया। कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। लगता था मुर्दनी सी छा रही है। निराशा के किसी क्षण में ही मैंने विवाह करने की स्वीकृति दी थी। ससुराल वालों ने कन्या की जो विशेषताएँ बताई थीं, उनसे मैं बहुत उत्साहित तो नहीं हुआ था, किन्तु असंतुष्ट नहीं था। 'आयु १४ वर्ष,

विद्याविनोदनी पास है, कुछ संगीत भी जानती है।'

सोचा था अल्प-वयस है, पढ़ा लूँगा। संगीत के लिए पास के स्कूल में भर्ती करा दूँगा। किन्तु कन्या के मुख से ही पता चला वह २१ वर्ष की है, उसने कोई परीक्षा पास नहीं की और उसे संगीत का बिलकुल ज्ञान नहीं।

निराशा पर निराशा।

मुझे धोखा हुआ। मैं जीवन की बाजी हार गया।

मैंने उसके चेहरे पर उत्फुल्लता नहीं देखी। कुरूप नहीं है, किन्तु उसके मुँह पर अजीब-सी मूर्खतापूर्ण सुस्ती है। इसका स्वभाव कभी मुझसे न मिलेगा। यह मुझे सन्तुष्ट न कर सकेगी। यह मेरी प्रेयसी न हो सकेगी, दासी भले ही बनी रहे। दासी मैं नहीं चाहता। आज के प्रगतिशील युग में यदि नारी पुरुष के साथ समान गति से न चल सकी तो गले में मढ़े हुए ढोल सी दुःखदायिनी होगी।

जिस स्थिति से बचने के लिए विवाह टालता रहा, वही स्थिति सम्मुख थी। जिस प्रकार की नारी से दूर रहना चाहता था, वही गले पड़ी।

अब क्या किया जाय ?

जो कन्यायें मनोनीत नहीं होतीं अथवा जिनके यहाँ से दहेज कम मिलता है लोग उन्हें सताते हैं—मारते हैं, झगड़ते हैं, विदा नहीं करते, नैहर भेज देते हैं तो वहीं सड़ने देते हैं। मैं तो यह सब नहीं कर सकता।

मेरी सब उड़ानें बन्द हो गईं। मेरे पर कट गए।

मेरे ऊपर दुहरी मार पड़ी है। घोर अतृप्ति को छिपाकर नववधू के समक्ष आकुल प्रेमी का अभिनय करना होगा। उस बिचारी निरीह कन्या का दोष ही क्या है ! फिर दोष किसका ? उसके घर वालों का ? घर वाले भी तो सुपात्र पाने में परेशान रहे होंगे, तभी यह षड्यन्त्र किया। दोष मेरा ही है, जो बुद्धू बना।

उपाय कोई नहीं, शंकर की तरह विष पीना ही पड़ेगा।

···रात्रि भर नींद नहीं आई। कभी अपनी मृत्यु की कामना करता और कभी उसकी मृत्यु की। विदेशों में तलाक तो हो जाता है, यहाँ वह भी नहीं। हिन्दू-कोड-बिल पास भी हो गया तो क्या हुआ। समाज एवं हमारे

मन के संस्कार अभी तलाक को स्वीकार न कर सकेंगे। यदि तलाक स्वीकार भी हो जाय तो क्या यह नववधू जीवन-पर्यन्त विधवा जैसा जीवन व्यतीत न करेगी ? उसे प्यार न करते हुए भी क्या उसके प्रति इस अविचार से मैं जीवन-भर सुखी रह सकूँगा ?

रात्रि-भर छटपटाता रहा।

प्रातः होटल पहुँचकर गरम-गरम कॉफी के दो प्याला चढ़ा गया। फिर भी जाने कैसा लगा। तन और मन दोनों टूट रहे थे। पार्क की ओर चला। अनेक सजी-बजी छोकरियाँ इठलाती चली जा रही थीं। रंग-बिरंगी साड़ियाँ, सलवारें, कंचुकि, चोटियाँ, जूड़े, लहराती-बलखाती कमरें, नृत्य भंगिमा में उठते हुए से चंचल-चरण, कुहू-ध्वनि-सा मधुर कण्ठ···सब मेरी पहुँच के बाहर थीं। इनमें से किसी भी बाला को आकर्षित कर मैं अल्पकाल के लिए सुख-संगिनी बना सकता हूँ; किन्तु किसी एक को भी मृत्यु-पर्यन्त जीवन-संगिनी बनाने के सौभाग्य से वंचित रह गया।

इसके पूर्व तो मैंने किशोरियों के प्रति इतनी प्यास का अनुभव नहीं किया था।

'भो-भो चाणक्य, चम्पा फूल की गन्ध···।'

पीछे घूमकर देखा निर्मल सेनगुप्त खड़ा था। इसे मैं कॉमरेड कोकामुनि कहता हूँ। वह मुझे चाणक्य कह-कहकर पुकारता है। मुझे किशोरियों की ओर सतृष्ण-दृष्टि से देखता हुआ पाकर ही वह चम्पा फूल की गन्ध का उल्लेख कर रहा था। इसी ने मुझे बताया था कि किसी बँगला उपन्यास-कार ने कहीं पर लिखा है कि जब नागिनी कामातुर होती है तो उसके शरीर से चम्पा फूल की गन्ध निकलती है।

वह मुझे बाँह पकड़कर खींचता हुआ एक बेंच की ओर ले चला। मैं समझ गया यह मुझसे विवाह-सम्बन्धी वृत्तान्त जानने के लिए उत्सुक है। हुआ भी वही; बोला, 'फूल-शय्या का हाल बताओ।' मुझे ठेस लगी।

'बताओ न, दुर्बल होकर आए हो।' दुर्बल शब्द में व्यंग था। मैं तिल-मिला गया।

'पहले तुम अपनी फूल-शय्या के बारे में बताओ।'

'तुम तो जानते हो मेरा विधिवत् विवाह नहीं हुआ।'

'तो अवैध जो हुआ वही बताओ।'

'तो पहली अवैध फूल-शय्या का वर्णन सुनो। एक लड़की थी सुन्दर, खूब सुन्दर। नाम था यूथिका। पुकार नाम था जूथि। पहली बार उसे देखा था गुलाबी साड़ी और काले ब्लाउज़ में। झाड़ू लगा रही थी। उसी दिन वह मेरे हृदय में प्रवेश कर गई थी। वह भी मुझ पर उसी दिन लुब्ध हुई थी जैसा कि उसने बाद में बताया। हम दोनों के एक सम्बन्धी के यहाँ कन्या का विवाह था। व्यस्तता और भीड़ के बीच रात्रि के एकान्त में भेंट हुई, तो मैंने पूछा—अब तुम्हें दो-एक दिन नींद तो आएगी नहीं। बोली—क्यों? बताया कि जब किसी का ब्याह होता है तो क्वाँरी लड़कियाँ छाती से तकिया लगाकर लेटती हैं और रोती हैं। वह हँसकर बोली—जानकारी तो अच्छी है। इधर-उधर की बातचीत होती रही। कुछ देर बाद वह स्वयं बोली—आज के एखानेइ थेके जाबो (आज यहीं रह जाऊँगी)।

'जिसको जहाँ स्थान मिला वहीं सो गया। हम पास-पास अँधेरे में सोये। रात-भर छटपटाते रहे, जाँचते रहे और वहीं प्रथम फूल-शय्या हुई। फिर इसके पश्चात् तो माँ आदि की दृष्टि बचाकर पचासों बार।'

मैंने अकस्मात् प्रश्न किया—'वह तुम्हारी मौसेरी बहन रही होगी?'

वह चौंक उठा—'कैसे जाना?'

'सभी लोग भाई बहिन समझ कर निश्चिन्त रहे होंगे और तुम दोनों मजे में फूलशय्या मनाते रहे।'

'हमने लोगों से साफ कह दिया पति-पत्नी बन कर रहेंगे। माँ और भाई नहीं माने। बड़ा झगड़ा हुआ और उसे मासिमाँ के पास वापस भेज दिया गया। जाते समय चौड़े पाड़ की काली साड़ी पहने थी, मुँह सूख गया था और आँखों से आँसुओं की नदी बह रही थी। मैं आज तक उसे नहीं भूल सका हूँ। तभी से मैं भी घर से निर्वासित आवारा बना घूम रहा हूँ।'

'यार, हमने एक बात देखी है—कामरेड लोग अधिकतर ऐसे लोग हैं जो किसी कारण हिन्दू घराने के संयम और मर्यादापूर्ण वातावरण से वंचित रह गए हैं। जिन्होंने हिन्दुओं के संस्कारों को समझा नहीं, वही

अधिकांशत: उच्छृंखल कामरेड हैं। इसीलिए तो तुम लोगों में नैतिकता नहीं होती।'

'नैतिकता गई चूल्हे में। रंजन बाबू, यदि मैं क्रिश्चियन या मुसलमान होता तो पाप न होता। हिन्दू हूँ इसलिए मौसेरी बहिन से विवाह न कर सका।'

मैंने कहा—'बेटा, पशु होते तो और भी अच्छा था। फिर सगी बहिन आदि में भी भेद न देखते।'

'पशुओं में भेद नहीं ही होता है। मनुष्य के बन्धन कृत्रिम हैं।'

'कृत्रिम तो वस्त्र भी हैं। नंगे घूमो—दुष्ट कहीं के। अपनी अनैतिकता को तर्क से छिपाना चाहते हो। हमारे शास्त्र समाज का संयमन करते...'

'चाणक्य, तुम समझते हो मैंने संयम नहीं किया। बहुत किया, काली माँ की सौगन्ध खाई, सब बेकार। आत्मा की हत्या है। और इस प्रकार की समस्याएँ उत्तर प्रदेश में अभी नहीं हैं। यहाँ का समाज इतना शिक्षित और संस्कृत नहीं है। बंगाल में बीसवीं शती है और यहाँ अभी भी उन्नीसवीं शती चल रही है। तुम्हारे बाद एक पीढ़ी आयगी तब देख लेना।'

'रे रे धूर्त कॉमरेड, तू कहना चाहता है कि बंगाल प्रगतिशील है और वहाँ ये उच्छृंखलताएँ मान्य हैं। झूठा कहीं का। हमारे समाज की मान्यताएँ सारे भारत में एक हैं। भले ही कलकत्ता जैसे बड़े नगर में तुम्हारे जैसे कुछ परिवार नाथ-पगहा हीन हो गए हों।'

इसी समय हमारी बेंच के सामने से दो अधेड़ और एक नवयौवना बंगालिन निकलीं। सेन गुप्ता चिल्ला उठा—'काकी माँ ?'

'के गो निर्मल ?'

'आशे ह्याँ।' कह कर सेनगुप्ता उठकर उनके पास चला गया। जब वे चली गईं, सेनगुप्ता मेरे पास आकर बोला—'देखा, मैं प्रश्न कर रहा था काकी माँ से और यह लौंडिया इठला कर उत्तर दे रही थी। बड़ी रोमांटिक है।'

'यह कौन है ?'

'घोष की छोटी बहिन।'

'तुम्हें सभी लड़कियाँ रोमांटिक लगती हैं।'

सोचा, जब अपने मित्रों की बहिनों और अपनी मौसेरी बहिन आदि के प्रति यह ऐसे विचार रखता है, तो यह कब क्या कर बैठे क्या ठिकाना। इसका विश्वास ही क्या ?

वह मेरी ओर ध्यान से देखता रहा, चौड़े गलफड़े फैला कर मुस्कराया और फिर अपनी आदत के अनुसार अधजला सिगार सुलगा कर कश लगाने लगा। सच ही गम्भीर होकर बोला—

'जाने क्यों तुम्हारे मुँह पर मुर्दनी छाई है। सारा चेहरा काला सा पड़ गया है। क्या तुम विवाह करके सुखी नहीं हो ?'

वह मेरी दुखती हुई रग छू रहा था। फीकी मुस्कराहट के साथ मैंने उत्तर दिया—'बस समझ लो—'मनेर मानुष मिल लो ना जार'...

'तो तुम्हें मन का मानुष नहीं मिला ?'

'कुछ ऐसा ही है।'

'वह कभी नहीं मिलेगा।'

'क्यों ?'

'क्योंकि वह एक व्यक्ति में नहीं होता। वह खंड-खंड होकर कइयों में समाया होता है। कोई स्त्री सर्वांग सुन्दर नहीं होती। किसी के बाल जहरीले नाग से हैं, तो किसी की धनुषाकार भौंहें दिल पर तीर चलाती हैं। किसी के लाल रसीले ओंठ आमंत्रित करते हैं, तो किसी की लहराती हुई पतली कमर भुजाओं को रोमांचित करती है। यदि किसी नारी में ये सब बातें मिल भी जाएँ तो हो सकता है वह नृत्य-संगीत में प्रवीण न हो, अथवा घरों में पाई जाने वाली रामदेई, सीतादेई जैसी पतिव्रता न हो। तो दादा ! सीता, रंभा, उर्वशी, सरस्वती, शकुन्तला और आधुनिका के सभी गुणों को एक नारी में कैसे पा सकोगे ?'

'वाह गुरू कोका मुनि, मेरे मन की बात बोल रहे हो। पर यह तो बताओ कि किया क्या जाय ?'

'ये गुण अलग-अलग ढूँढो, जहाँ मिल जाएँ वहीं लूटो।'

'अर्थात् ?'

'अर्थात् समाज में विवाह-प्रथा का लोप हो जाए तो 'मनेर मानुप मिल लो ना जार' गाने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी। जब तक कोई स्त्री अच्छी लगे रस लूटो। ऊब जाओ तो दूसरा माल देखो।'

'और दोस्त ! अगर एक ही माल हम-तुम दोनों को पसन्द आ जाए तो फिर आपस में छुरी-चाकू चलाओ।'

'जानते हो, विवाह-प्रथा चली ही क्यों ?'

'तुम्हीं समझाते जाओ।'

'सन्तान की रक्षा के लिए। स्त्री गर्भवती होने पर जीविका नहीं कमा सकती। सन्तान के जन्म के पश्चात् उसका पोषण नहीं कर सकती। इस काल में पुरुप के संरक्षण की आवश्यकता होती है। विवाह के बन्धन में पुरुष न बाँध दिया जाए तो वह कभी जिम्मेदारी नहीं लेगा। गर्भाधान करने के पश्चात् चलता बनेगा। अगर राज्य गर्भवती स्त्री की रक्षा का भार ले ले तथा शिशुओं के पालन की व्यवस्था के लिए नर्सरी खोल दी जाएँ तो स्त्री को पति की आवश्यकता नहीं रह जायगी। समझे पंडित महाशय ?'—कहते-कहते पेंट के बटन खोलकर एक ओर नाली के पास चला गया। कुछ अधिक देर बैठने के उपरान्त ही उठा।

मेरा मन वैसे ही विपाक्त था, इस दुष्ट ने असन्तोष जगाने में और भी सहायता की। विदा माँगी, तो कमरे तक साथ चलने को प्रस्तुत हुआ। बड़ी कठिनाई से पीछा छुड़ा कर भाग सका।

तीन

...गर्मी पड़ने लगी थी। पत्नी मायके में थी। न पत्र गया न आया। गौने के सम्बन्ध में पिताजी से पत्र-व्यवहार चल रहा था। इस वर्ष मैं जीविकाउ-पार्जन के साथ ही एम० ए० फाइनल की परीक्षा दे रहा था।

बहाना कर गौने के लिए नहीं गया।

मेरे अधिकार में केवल एक कमरा था जो एक घर का ड्राइंगरूम था। पहली जून से यह पूरा घर खाली होने वाला था। मैंने पेशगी किराया देकर ठीक कर लिया। मकान बड़ा और स्वच्छ नहीं था, किन्तु मेरी जैसी स्थिति के व्यक्ति के लिए ठीक ही था। 'तेते पाँव जेती सौर।'

सामने वाले बड़े मकान में गुप्ता परिवार रहता था। गृह स्वामी से साधारण परिचय था। मैं स्त्रियों के सामने कभी नहीं हुआ। अब लड़कियाँ मेरी ओर उत्सुकतापूर्वक देखने लगी थीं। शायद इन्हें ज्ञात हो गया था कि मैं एक ऐसा प्राणी लाने वाला हूँ, जिससे ये लोग मैत्री करने की योजना बना रहे होंगे।

जो थोड़ी सी पूंजी थी, मकान के सजाने और स्वच्छ करने में समाप्त हो गई। पर्दे, चिक, गमले आदि खरीद लाया। निर्धनता में भी कलात्मक ढंग से घर को जितना सजाया जा सकता था, सजा लिया।

...जून के प्रथम सप्ताह में साले के साथ मेरी धर्मपत्नी जी आ पधारीं। वे मेरे गाँव होते हुए अपनी बहिन को लेते आए थे।

सन्ध्या के समय आधा घूँघट निकाल कर साले-बहनोई को भोजन परोसा गया। साले साहब से एकाध बातचीत हुई अन्यथा चुपचाप खाते रहे। साले साहब विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए आए थे। छात्रावास में ही रहेंगे।

भोजन के पश्चात् साले साहब बैठक में ही सोने चले गए। मैं ऊपर छत पर आकर लेट गया। धरती पर ही चटाईयाँ बिछाकर बिस्तर लगा लिया था। खुली हवा और प्रकाश मुझे बेहद पसन्द है।

अभी तक हम आपस में एक शब्द भी न बोले थे। ऊपर से झाँककर देखना चाहा वह क्या कर रही है। वह शीशे के सामने खड़ी बिन्दी लगा रही थी। चेहरे की मूर्खतापूर्ण सुस्ती और भी अधिक स्पष्ट थी। रंग कुछ निखरा हुआ सा प्रतीत हुआ। कुछ ऐसी नीरस और शीतल सी प्रतीत हो रही थी, जो किसी भी नवयुवक का हृदय प्रेम से आन्दोलित नहीं कर सकती। बत्ती बुझ गई। मैं पुनः लेट गया। आठ-दस मिनट के पश्चात्

बाँस की सीढ़ी मचकने लगी। वह ऊपर आ रही थी। वह आकर मेरे पैरों के पास बैठ गई। मेरा एक पैर अपनी जाँघ पर रख कर धीरे-धीरे दबाने लगी। पिंडलियों में धीरे-धीरे इस प्रकार अँगुलियाँ घुमा रही थी कि वास्तव में बड़ा सुख मिल रहा था। अँगुलियाँ चटका कर तलुए मल दिए, इसके पश्चात् धीरे से बोली—'सो गए ?'

'न।'

'तो उठिए।'

'क्यों ?'

'उठिए।'

'अच्छा सरकार ! जो आज्ञा।'

बैठ गया। उसने दोनों पैर सात बार छूकर माथा रख दिया। मैंने दोनों हाथों से माथा उठाकर पूछा—'खुश करने के ये ढंग किसने सिखा दि हैं ?'

'किसी ने नहीं।'

'ब्याह में आयीं तब तो कुछ नहीं किया था।'

'तब शरम लगती थी।'

'अब ?'

'अब तो यह घर मेरा है।'

'और तुम किसकी हो ?'

'............'

'बोलो।'

'आपकी।'

'न तुम्हारी कहो।'

'आप बड़े हैं।'

'न, यह न चलेगा।'

'अच्छा। तुम गौने में क्यों नहीं आए ? मुझे बहुत बुरा लगा। उस दिन रोई थी।'

मैंने कुछ न कहकर उसे एक ही तकिये पर लिटा लिया। मेरे ऊपर

हाथ से पंखा झलती बोली, 'सुना है तुम बहुत कष्ट उठाते रहे हो ?'

'हाँ, अखबार बेंचकर पढ़ाई कर सका हूँ। कई बार तो केवल एक बार भोजन कर सो रहा था।'

पंखा झलना बन्द हो गया। अब तक पूर्णिमा का चन्द्र धीरे-धीरे ऊपर उठ आया था। मुड़कर देखा उसकी आँखों से आँसुओं की एक पतली धार तकिये पर टपक रही थी।

'पगली, यह क्या ?'

'जिस समय तुम आधे पेट रह जाते होगे, मैं सुअरिया की तरह भर-पेट खाती होऊँगी। मैं बड़ी पापिन हूँ।'

'तब तुम मेरी थीं ही कौन ? तब की सोचकर व्यर्थ दुःखी होती हो।'

चन्द्रमा ठीक आकाश के मध्य चमकने लगा था। हवा में भी कुछ शीतलता आ रही थी। पता नहीं हम कब तक जागते रहे। चन्द्रमा के नीचे झुकते ही हमारी पलकें झपक गयीं।

''''वह प्रभात में देर से उठी। मुझे यह सह्य नहीं। मैं चाहता हूँ सूर्योदय के पूर्व ही गृहिणी उठकर गृह-परिष्कार कर ले। मैंने नीचे उतरकर सफ़ाई प्रारम्भ कर दी। वह भी बिस्तरे लेकर उतर आई। मेरे हाथ से झाड़ू छीन ली। स्नान के उपरान्त मैं कम-से-कम बनयान और अण्डरवियर रोज साबुन लगाकर साफ कर लेता हूँ—गर्मी में दोनों समय ही। उसने आकर हाथ पकड़ लिया। मैंने पूछा—'क्या है ?'

'मैं धोऊँगी।'

उठ आया। मुझे लगा यह अधिक बात पसन्द नहीं करती, कुछ मन-धुन्नी-सी है। मैं भी निरुत्साह और चुप बना रहा। भाई को कमरे में नाश्ता देने गई। वहाँ दोनों न जाने क्या बोलते रहे। अकस्मात् चाँदी की घण्टियों की मधुर-ध्वनि सी हँसी गूँज उठी। तो यह हँसना भी जानती है !

मेरे पास जलपान का सामान रखकर बैठ गई। पानी से भरी कटोरी मेरे पैरों के पास रखकर मेरे दाएँ पैर का अँगूठा उठाने लगी। फिर उसे पानी में डुबोकर पी गई।

'यह क्या है ?'

'चरणोदक।'

'क्या यह चरणोदक रोज लिया जायगा ?'

'हाँ, क्यों ?'

'न बाबा, यह झंझट मुझसे न होगा।'

वह कुछ न बोली। केवल भय, लज्जा और संकोच से भरी आँखें एक बार उठाकर नत दृष्टि हो गई।

'तुम्हारा घर का नाम क्या है ?'

'राजकिशोरी।'

'मैं तुम्हारा नया नाम रखूँगा। तुम्हारी बोली बड़ी मीठी है। इसलिए तुम्हें प्रियवदा कहूँगा। जानती हो प्रियंवदा कौन थी ?'

'न।'

'शकुन्तला की सखी। कभी कहानी सुनाऊँगा।'

···कर्मस्थल से (अर्थात् जहाँ नौकरी करता था वहाँ से) सन्ध्याकाल लौट आया। वह पर्दे की आड़ में खड़ी एक आँख बाहर निकाले झाँक रही थी। आकर कुर्सी पर बैठ गया। वह जूते के फीते खोलने लगी। पूछ बैठा, 'क्या तुमने उपन्यास पढ़े हैं ?'

'क्यों ?'

'शरद् बाबू का नाम सुना है ?'

'नहीं तो।'

'लोग शरद् बाबू के उपन्यासों की नारी पर बड़े लुब्ध रहते हैं। मेरे घर में तो साक्षात् बैठी है। कहाँ से ये कौशल सीख आई हो ?'

'मैंने तो कुछ नहीं सीखा। गाँव की मूरख औरत हूँ।'

घर में एक नई चमक अवश्य थी। मैं बहुत अधिक स्वच्छता प्रिय हूँ, किन्तु कमरों के फर्श को इतना चमकता हुआ तो मैं भी नहीं बना सकता। उसके हाथ के धुले कपड़े भी खूब साफ थे। चाय का प्याला मुँह से लगा कर बैठे-ही-बैठे घर का निरीक्षण कर रहा था। यह स्वच्छता प्रियजान पड़ी, किन्तु कलात्मक रुचि का अभाव जान पड़ा। सजावट में केवल सफाई थी, कलात्मक सूझ-बूझ नहीं थी। दो-एक अच्छे घरों में घुमाने से तथा

समय-समय पर निर्देश देने से यह कमी भी दूर की जा सकती है।

'तुम ऐसी कोई चीज़ क्यों नहीं खाते, जिससे थोड़ा माँस चढ़े।'

'है तो ऐसी चीज, किन्तु रुपया नहीं है। बड़ी कीमती है।'

'रुपया मैं दे दूँगी।'

'उसका नाम है पोटेशियम सायनाइड। अपने हाथ से खिलाओ तो खरीद लाऊँ।'

'हाँ, खिला दूँगी।'

'उसका प्रभाव जानती हो?'

'मैं क्या जानूं।'

'अगर सुई की नोंक पर रखकर किसी के शरीर में जरा-सा चुभो दिया जाय तो वह हमेशा के लिए सो जाय।'

वह तो चीखकर रो पड़ी और धरती पर लोट-पोट होने लगी। मैं थोड़ी देर के लिए किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया।

'हाय, मेरे मुँह से ऐसी अशुभ बात क्यों निकलवाई? मुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी, हाय राम!'

'तुम तो जरा-सा भी मजाक पसन्द नहीं करतीं।'

'मुझसे ऐसा मजाक अब कभी न करना।'

...छत से नीचे झाँककर देखा, वह मेरे जूठे बर्तनों में निर्विकार चित्त से भोजन कर रही थी। सारा काम निबटाकर ऊपर आ गई। पैर दबाने का वही क्रम चालू हो गया। परिहास करते हुए कहा—'पुत्रं देहि।'

वह अनुमान से समझकर बोली, 'न।'

'फिर मुझको बापू कहकर कौन पुकारेगा?'

'मैं क्या जानूं?'

'और अगर वह बिना बुलाए आ गया तो?'

'गरदन मरोड़कर मार डालूँगी।'

'चलो आज बोली तो।'

पैर तभी छूती थी, जब मैं बैठ जाता था। उससे कई महीनों तक पूछता रहा मुझे बैठने की सजा क्यों देती हो, किन्तु उसने कभी न बताया।

अन्य लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि मरे हुए व्यक्तियों के पैर लेटी हुई अवस्था में छुए जाते हैं। अशुभ होने के कारण वह बिठाकर पैर छूती थी। सात बार की गिनती में कभी व्यवधान न पड़ा। मैं गिनती भुलाने के लिए उलटी-सीधी गिनती पढ़ता—४, ३, ५, १ आदि। उसे जब लगता कि वह गिनती भूल गई तो फिर से प्रारम्भ कर सात बार मन-ही-मन गिन लेती। आज जब प्रणामकर सिर पैरों पर रखा तो उसे उठाते हुए आशीर्वाद दिया, 'पुत्रवती कभी न भव। ठीक है न ?'

वह चुप और उदास।

'बोलो।'

'भला ऐसा कौन चाहेगा, पर कुरूप···।'

'कुरूप सन्तान नहीं चाहिए ?'

'हाँ।'

'अच्छा तो सुन्दर पुत्रवती भव।'

चार

घर में मन-बहलाव का कोई साधन नहीं और आलस बढ़ जाने के कारण बाहर जाने की इच्छा नहीं होती।

पत्नी के साथ न ताश आदि खेल सकता और न किसी विषय पर विचार-विमर्श कर पाता। उससे अधिक बात करते समय झुँझलाहट हो आती। आराम इतना मिलने लगा कि पानी भी हाथ उठाकर नहीं पीना पड़ता। इसी आलस के कारण घर में पड़ा रहता। सोचा, समय का सदुपयोग किया जाय। गाँव से प्राचीन पोथियों का बस्ता ले आया था। परीक्षा कर देख चुका था, कुछ अप्रकाशित पोथियाँ थीं। आज मेज पर उन्हें ही बिछाकर सम्वत् आदि की परीक्षा करने लगा। अनेक पोथियाँ ऐसी थीं, जिनकी प्रतिलिपि हमारे पुरखों ने तैयार की थी। किसी-किसी पोथी पर

ढाई सौ वर्ष पूर्व हुए किसी के विवाह का खर्च लिखा था। कपड़े पर बना हुआ तीन सौ वर्ष प्राचीन एक जन्मपत्रा भी था। मेरे बाबा ने बड़ी ही ललित संस्कृत में परशुराम-स्तुति की रचना की थी।

इन पोथियों को हाथ से छूकर न जाने कैसा लग रहा था। इच्छा हो रही थी और कुछ न करूँ पाण्डित्य की परम्परा ही अखण्ड रखूँ।

प्यास लगी थी। उठा न गया। पीछे आहट पाकर देखा श्रीमतीजी पानी लिए तैयार खड़ी हैं।

'वाह, पता नहीं, तुम मेरे मन की बात कैसे जान लेती हो। सच बताओ, जादू तो नहीं जानतीं ?'

'हाँ ऽऽ तुम भी खूब हो।'

'मैं भी मन की बात जानता हूँ, निश्चय ही तुम कुछ कहना चाहती हो।'

'बुरा न मानो तो कहूँ।'

'तुम्हारी बातों का बुरा क्यों मानूँगा, प्रियम् ?'

'बीस रुपये दे दो ?'

'क्या करोगी ?'

'सामने वाली लालो के घर बढ़िया साड़ी आई है। वैसी ही·····'

'देखो प्रियम्, उस दिन रुपये माँगे थे, तो मैंने दे दिए थे और कहा था कि नई गृहस्थी की तैयारी में सब पूँजी खतम हो गई है। जो रुपये बचे सब तुम्हें दे दिए। अगले महीने में ले लेना। मैं चाहूँ तो साड़ी उधार ला सकता हूँ, किन्तु याद रखो भूखे रह लेंगे, किन्तु किसी का एक पैसा भी उधार नहीं लेंगे।'

'अपने घर पर होती तो·····' अधूरा वाक्य छोड़ उसने मुँह घुमा लिया। एकाध बार और वह चुभती हुई बात कह चुकी थी। इस बार मैं संयम न रख सका, बोल ही पड़ा परन्तु बाद में दुखी भी हुआ।

'भैंस सानी माँगती है और तितली पराग।'

'मैं भैंस हूँ ?'

'ऐसा तो नहीं कहा। मैं तो पंडित हूँ, यहाँ सरस्वती की पूजा होती

है। रेशम और सोने पर जान देनी थी तो यहाँ आई ही क्यों ?'

'तुम्हीं तो लेने गए थे।'

'जैसे गया था, मैं ही जानता हूँ। तुम्हारे घर के लोगों ने जैसा धोखा दिया, क्या कहूँ तुमसे।'

'कह लो, क्यों मन में रह जाय, तुम्हें बुरी कसम।'

ताव में आ गया। एक तो वैसे ही मन की न मिली और ऊपर से कलह कर रही है। कुछ सोचकर चुप रह गया। विवेक खोना अच्छा नहीं। एक अज्ञान स्त्री को क्यों ठेस दी जाय ? चुपचाप कलम उठाकर फिर पोथियाँ देखने लगा।

मेरे पास ही धरती पर टपटप बूँदें गिरीं। तो आप रो रही हैं। मैं मन-ही-मन जल-भुनकर खाक हो गया। मुझे निरर्थक रोने से अत्यधिक घृणा है। मैंने सान्त्वना न दी और भी अधिक मनोयोग से पढ़ने लगा, किन्तु मारे क्रोध के कुछ भी समझ में न आ रहा था।

द्वार के बाहर लोगों के आने की आहट हुई, चूड़ियाँ भी खनकीं। धीमे एवं दृढ़ स्वर में कहा—

'औरतें आ रही हैं। ठीक से व्यवहार करो।'

वह भीतर दौड़ गई।

कॉमरेड कोकामुनि रेवा घोष एवं अन्य किसी लड़की के साथ आया था। रेवा घोष को उस दिन पार्क में देखा था। दूसरी लड़की को नहीं जानता था। दोनों लड़कियों ने अभिवादन किया और कुर्सियों पर बैठ गयीं। वे एक-दूसरे को देखकर हँस पड़तीं। हँसी छिपाने के लिए साड़ियों के छोर ओठों पर रख लेतीं। एक उठी तो आल्मारी की पुस्तकें उलटने-पुलटने लगी। दूसरी पोथियाँ देखने लगी।

कॉमरेड बोले—'पोथियाँ कहाँ से उठा लाए ?'

'गाँव से।'

रेवा बोल उठी—'क्या रद्दी में बेचेंगे ?'

'रद्दी में बेचने के लिए सवा-डेढ़ सौ मील से लादकर न लाता। रद्दी में जितने पैसे मिलेंगे, उतने तो मार्ग में कुलियों पर खर्च हो गए। खैर बैठिए,

श्रीमती को बुलाता हूँ।'

भीतर जाकर देखा, प्रियम् ने स्टोव पर पानी चढ़ा दिया था। प्याला तश्तरी पोंछ रही थी। जानता था कि नई बहू का स्वागत करने लोग आते रहेंगे। कुछ मिठाई नमकीन पहले से ही लाकर रख छोड़ा था।

'बाहर चलो।'

'............'

'चलो।'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'शरम लगती है।'

'ठीक है, मेरी मरजी से तुम कुछ न करोगी।'

निराश लौट आया। नई लड़की बड़ी शालीनता से मुस्कराकर बोली, 'अच्छा बताइए, मैं क्यों आई हूँ ?'

'देवीजी, इन पोथियों में ज्योतिष की भी पोथी है। यदि देखना आता तो कोशिश करता। क्या करूँ लाचार हूँ।'

'आप तो बड़े मजेदार हैं।'

'हाँ, अपनी-अपनी भावना है, नहीं तो कुछ लोग मुझे इसका उल्टा भी समझते हैं।'

वह लड़की उछलकर खड़ी हो गई—'आइये बुआजी ! अरे देख क्या रही हैं ? मैं महेशजी अवस्थी की पुत्री ही हूँ।'

'अरे, तुम लता तो नहीं हो ?'—श्रीमती भी बोल ही पड़ीं, फिर मेरी ओर देखकर बोलीं—'मेरे मौसेरे भाई हैं वे।'

लता साँवली थी किन्तु आकर्षक। रेवा घोष की सखी रही होगी। तभी रहन-सहन में बंगालियों की नकल कर रही थी। शांतिपुरी साड़ी, बंगाली जूता और हाथ में नोआ (लोहे का कपड़ा) धारण किए थी। मैंने कहा—

'लता, तुम तो एकदम बंगालिन हुई जा रही हो ?'

'मुझे बंगाली बहुत अच्छे लगते हैं।'

'बँगला जानती हो ?'

'अभी नहीं जानती, किन्तु सीखूँगी।'

'पहले मछली खाना सीखो।'

'आपने क्या पहले मछली खाकर ही सीखी थी ?'

'मुझे बोलना कहाँ आता है। कॉमरेड कोका···कोकाकोला के सम्पर्क से 'आमि-तुमि' सीख गया हूँ।

दोनों हँसने लगीं। रेवा बोली, 'दादा, अब मैं भी तुम्हें कोकाकोला दादा कहूँगी।'

कोकामुनि गलफड़े फैलाए मुस्कराते रहे और बीच-बीच में सिगार के कश लगाते रहे।

लता इठलाकर बोली—'मुझे बँगला गीत आते हैं। हारमोनियम पर गा सकती हूँ।'

'कभी सुनूँगा।'

दोनों लड़कियाँ प्रियम् के साथ भीतर चली गयीं। सेन गुप्ता सिगार बुझाकर बोला—'यार, मैं पञ्चमुख होकर तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ और तुम मेरा अपमान करते हो।'

'क्या बताएँ भाई, गलती से कोकामुनि कहने जा रहा था।'

'जब तुम भीतर उठ गए थे, ये लड़कियाँ मुँह बना-बनाकर तुम्हारे कमरे का सामान देख रही थीं। मुझे बड़ा क्रोध आया। बताया कि जिसे तुम साधारण व्यक्ति समझ रही हो, उसका पूरा परिचय दूँ तो गद्‌गद् हो जाओगी। और अगर शादी न हो गई होती तो काकी माँ से कहता कि यह पात्र अच्छा है। कवि, नेता, शिक्षक, समाज-सेवक, सुष्ठु, शालीन सभी कुछ। नैतिक आदर्श नहीं मानता किन्तु कह सकता हूँ ठगा जा सकता है, ठग नहीं सकता।'

'भयंकर परिचय दिया है—नैतिक आदर्श नहीं मानता, कवि है—यही तो भयंकर परिचय है। करेला कड़ुआ उस पर नीम चढ़ा।'

'क्यों ?'

'लड़कियों के लिए ऐसा पुरुष लोभनीय है। बात यह है कि लेखक

कथा लिखते समय प्रायः कवि-लेखकों को ही कथा का नायक बनाया करते हैं। कथा-कहानियाँ पढ़ने वाली लड़कियाँ भी इन्हीं की ओर आकृष्ट होती हैं। वे समझती हैं कवि, फूल, पराग, तितली, नक्षत्रों आदि के साथ पलने वाला कोई अद्भुत प्राणी है। यह नहीं जानतीं कि यह भी आहार-निद्रा-भय-मैथुन करने वाला पशु ही है।'

'तुम्हारी क्षति क्या है! चम्पा फूल की गन्ध छोड़ती रहेंगी। ये दोनों हैं भी इसी काबिल। देखा—चलती हैं तो नितम्ब कैसे ऊपर-नीचे होते हैं।'

'वे दर्शनीय-स्थल तुम्हारे लिए ही तीर्थ रहें।'

तीनों चाय आदि लेकर आ गयीं। लता छूटते ही बोली—

'फूफा जी, तुलसीदास का यह चित्र इतने आदर से क्यों लगाए हैं?'

'क्योंकि वे परमादरणीय हैं।'

'उहुँ, रत्नावली ने दुत्कार दिया तो प्रतिक्रिया-वश नारी-निन्दा कर गए। यह क्या आदरणीय होने की विशेषता है?'

'जिस पुस्तक में रत्नावली वाली बात आई है, वही प्रामाणिक नहीं मानी जा रही है। यदि प्रामाणिक हो तो भी तुलसीदास नारी-निन्दक नहीं है। किसी दिन बैठो तो स्पष्ट कर दूँगा।'

'कुछ कहो, किन्तु प्राचीन काल में नारी पर बड़ा अत्याचार होता था। उसे विवाह के बाद मायके नहीं जाने देते थे।'

'और उसकी टट्टी-पेशाब भी बन्द कर देते थे।'

'आपने कैसे जाना कि···'

'तुमने कैसे जाना कि मायके नहीं भेजते थे?'

'रामायण में कहीं नहीं लिखा कि सीता जनकपुरी गयीं।'

'उसी रामायण में यह भी कहीं नहीं लिखा कि सीता टट्टी-पेशाब करने गयीं।'

लता खिसिया-सी गई। रेखा ने सेन गुप्ता की ओर हल्का-सा इशारा किया। वह बोला—'अब चलेंगे।'

···इनके जाने के पश्चात् प्रियम् फिर मुँह कुप्पा-सा फुलाए घूमती

रहीं। इस स्थिति में वह बदसूरत और अत्यधिक उपेक्षणीय प्रतीत होने लगती थी। मैं भी कुढ़कर नहीं बोलता।

रात को प्रणाम करते समय बोली, 'मुझसे बोलते क्यों नहीं ?'

'मुँह तुम फुलाए हो कि मैं ?'

आँसू पोंछती बोली, 'मेरी तबियत खराब है।'

'जिसकी तबियत खराब होती है सो कह देता है कि मैं बीमार हूँ, न कि वह बात बात पर झुँझलाता है और मुँह लटकाता है। खबरदार, मुझे बिना बात के आँसू बहाने से घृणा है।'

आँसुओं से गीला मुँह पैरों में रगड़ती हुई बोली, 'मुझे माफ कर दो, गलती हुई।'

मैंने उसके आँसू पोंछकर पूछा—'बताओ, कहाँ दर्द होता है ?'

'कमर, पेट और सिर में।'

'कल डॉक्टर के यहाँ दिखा दूँगा।'

'मैं नहीं जाऊँगी।'

'क्यों ?'

'पैसे कहाँ हैं ?'

'अकस्मात् आवश्यकता के लिए मैंने दस का एक नोट लिफाफे में बंद कर रख छोड़ा है। ड्राअर से निकाल लेना। इन लड़कियों के यहाँ जाओगी ?'

'लता के यहाँ हो आऊँगी।'

'लता के पिता तुम्हारे सगे मौसेरे भाई हैं ?'

'न, दूर के हैं।'

'एक बात कहना भूल गया था। तुम्हारी हथेली खूब रची है। कहाँ से पा गयीं मेंहदी ?'

'सामने वाले गुप्ताजी की लड़की लालो दे गई थी। उसके घर हो आया करूँ ?'

'तुम किसी के भी घर जाने को स्वतन्त्र हो।'

पाँच

लालो हम लोगों की खूब मुँहलगी हो रही थी। प्रातः ही आकर बोली, 'भाई साहब, बहनजी क्या कर रही हैं ?'

'बहनजी कौन ?'

'आपकी बीवी और कौन ? हाँ नहीं तो।'

'हाँ नहीं तो, या तो उन्हें भाभी कहो या फिर मुझे जीजा।'

'वाह, क्या कहने हैं, इन्हें जीजा कहूँ ?'

'अच्छा तो समझौता कर लिया जाय। दिन के बारह बजे तक भाई साहब और उसके बाद जीजाजी। बस भाग जाओ भीतर।'

थोड़ी देर में प्रियम् तैयार होकर आ गई। वह तो ऐसी घबड़ाई हुई-सी प्रतीत हो रही थी, मानो डॉक्टर के पास न जाकर जल्लाद के पास जा रही हो।

लालो बोली, 'हम भी चलेंगे।'

'तुम वहाँ कहाँ जाओगी ?'

'फिर मैं यहीं बैठूँगी।'

'हमें लौटने में दो-तीन घण्टे लग जाएँगे।'

'तो क्या हुआ। जब तक पढ़ने में मन लगेगा, पढ़ूँगी, नहीं तो बन्द करके अपने घर चली जाऊँगी। चाबी देते जाइए।'

× × ×

लेडी डॉक्टर चन्द्राबाई प्राइवेट प्रैक्टिस भी कर लेती थी। अच्छा नाम था। रोगी स्त्रियों का अच्छा जमाव था। प्रियम् भीतर जाकर बैठ गई। डॉक्टर की आवाज सुनाई पड़ी, 'कहो रानी, नई कि पुरानी ?'

प्रियम् का धीमा स्वर सुनाई पड़ा, 'नई।'

एक सम्मिलित खिलखिलाहट।

धीरे-धीरे दुबली-पीली, फूले पेट वाली, गोरी, काली अनेक प्रकार की स्त्रियाँ एक-एक कर बाहर निकलने लगीं। कम-से-कम डॉक्टर के बँगले पर जिन स्त्रियों के दर्शन होते हैं, वे तो सन्तों के विराग-वचनों का स्मरण दिला

देती हैं। क्या रखा है नारी में !

कहीं डेढ़ घण्टे बाद डॉक्टर झुँझलाई हुई सी बाहर निकली—

'मिस्टर शुक्ला कौन साहब हैं ?'

मैं उठकर खड़ा हो गया—'जी।'

'इज़ शी एजूकेट्रिड ?'

'शी इज़ शिक्षित बट नॉट एजूकेटिड ?'

'क्या माने ?'

'माने वह हिन्दी जानती है, अंग्रेजी नहीं।'

'कुछ हो, वह ठीक से बतलाती नहीं है। हल्का बुखार रहता है। स्क्रीनिंग करानी होगी। स्क्रीनिंग की रिपोर्ट लेकर मिलिए। कुछ दवाइयाँ लिख दी हैं। इंजेक्शन भी लगवाने होंगे।'

···प्रियम् बहुत घबड़ाई हुई थी। रिक्शे में आकर बैठी, उस समय भी वह बिल्कुल मौन थी। इस प्रकार वह डॉक्टर के पास कभी नहीं गई होगी। मुझे दया आ गई। धीरे से बाँह में चुटकी ली। वह मुँह फुलाकर बोली—'अब इनके यहाँ कभी नहीं जाऊँगी।'

'भला, मत जाना।'

कॉफी हाउस के पास रिक्शा रुकवाकर भीतर आ गए। वह इतने बड़े होटल में आकर चकित थी। बैरा को बुलाकर दो कॉफी का आर्डर दिया।

'मुझे कुछ नहीं खाना-पीना।'

'खाओ मत, पी लो। इसमें धर्म नहीं जाएगा।'

'न, ये लोग जूठी प्लेट-प्यालों में दे देते हैं।'

उसकी बात तो अंशतः ठीक थी, किन्तु उसे थोड़ा-सा प्रगतिशील बनाना चाहता था। इसलिए हठ कर गया कि तुम्हें पीना ही होगा। वह इस बात पर तैयार हुई कि पहले प्लेट में थोड़ी कॉफी डालकर चखेगी, यदि अच्छी लगी तो पी लेगी, नहीं तो सब जूठी नहीं होगी और मैं पी लूँगा।

उसने एक घूँट पीकर प्लेट रख दी और रूमाल द्वारा जोर से मुँह ढँक लिया। अपने बटुए में से पान-सुपारी निकालकर खायी, बोली, 'मेरे वश की नहीं। मैं कभी होटलों में कुछ नहीं खाऊँ-पिऊँगी। मितली-सी होने

लगती है।'

उसने यह भी बताया कि रोगी स्त्रियों में से एक कह रही थी कि जब कोई नई स्त्री आती है तो डॉक्टर रानी, रानी कहकर स्वागत करती है। फीस लेने के बाद कह देती है कि अस्पताल में आकर दिखाओ। घर पर मत आना। उस स्त्री की ननद से कहा कि जब महीने से हो तो अस्पताल आना, तुम्हारा ऑपरेशन होगा। जब वह पहुँची तो डॉक्टर बहुत बिगड़ी कि मैंने तुमसे कब कहा था कि ऑपरेशन होगा और किसी से कहा था। वह बिचारी सब साज-सामान लेकर लौट आई।'

बिल का भुगतान कर होटल के द्वार से निकल ही रहा था कि पीछे मुड़कर देखा, एक युवक चला आ रहा था। बोला—'नमस्कार पंडित-जी!'

मैं उसके कीमती पेंट-बुशशर्ट और काले चेहरे को गौर से देखता रहा। वह बोला, 'पहचाना नहीं?'

'न।'

'मैं आपके ही गाँव का पातीराम धानविक हूँ।'

अरे रमरतिया का भैया है। मैं तुरन्त ही आत्मीयता के साथ बोला—'हाँ, पहचान गया। यहाँ क्या कर रहे हो?'

'यूनिवर्सिटी में बी० ए० प्रथम खंड में पढ़ रहा हूँ। आप क्या कर रहे हैं?'

'मैंने इस वर्ष संस्कृत में एम० ए० फाइनल किया है। प्रथम श्रेणी से भी अधिक अंक प्राप्त हुए, किन्तु अभी कहीं ठिकाने से नहीं लगा हूँ। एक प्राइवेट फ़र्म में अस्सी रुपये मासिक पर क्लर्की कर रहा हूँ। कुछ ट्यूशन से कमा लेता हूँ।'

'मैं यहाँ के अछूत विद्यार्थी-संघ का उपमंत्री हूँ। आज हमारी कार्य-कारिणी की बैठक में विचार होगा कि हम बौद्ध-धर्म अपनाएँ अथवा नहीं।'

'तुमने बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन किया है?'

'न।'

'तो लोभ एवं प्रतिक्रिया-वश धर्म परिवर्तन अशुभ है—देश के लिए और उस धर्म के लिए भी, जिसे ऐसे लोग अपनाते हैं।'

'हम शोषित हैं। हमारे साथ अत्याचार हुआ है।'

'तुम तो शोषित नहीं हो। तुम्हारी फीस माफ होगी, सरकार से पचास-साठ रुपया वजीफ़ा मिलता होगा। मैं ब्राह्मण हूँ, आधा पेट रहकर, हाथ से भोजन पकाकर, अखबार बेचकर, ट्यूशन कर पढ़ सका हूँ। और तुम सरकार के दामाद बनकर पढ़ रहे हो। मैं सवा रुपया गज का कुरता पहने हूँ, तुम्हारी बुशशर्ट का कपड़ा ही पाँच-छः रुपए गज से कम न होगा। मुझे नौकरी नहीं मिल रही है और तुम्हारी सीटें रिज़र्व हैं। ऐसे भी हाथ मारते हो, वैसे भी। चुनावों में भी पौ बारह हैं। प्रत्येक पार्टी वोटों के लालच में तुम्हारे पक्ष में अंधाधुन्ध होड़ लगाए है।'

'खैर पंडितजी, कभी आपके घर पर आऊँगा, तब विचारों का आदान-प्रदान हो जाएगा। आप आने तो देंगे अपने घर?'

'हाँ, यदि भारतीय बनकर, हिन्दू बनकर आओगे तो; अन्यथा अछूत और शोषित बनकर आए तो तुम्हारे जाने के बाद नहाऊँगा और जिस कुर्सी पर बैठोगे, उसे धो डालूँगा।'

मैंने एक कागज़ पर पता लिखकर दे दिया। वह कागज़ लेते हुए गर्व-सहित हँसकर बोला—'दीनू मिश्र को तो जानते होंगे, उनका छोटा भाई श्यामू अमीनाबाद में चाट बेचता है। बेचते चाट हैं, किन्तु अकड़ न गई। उस दिन चाट माँगी तो दूर से पत्ता दिया, छुआ नहीं।'

'क्या करें बेचारे, धन और सम्मान चला गया, अकड़ भी न रखें तो क्या करें! अब तुम्हीं देख लो शोषित की स्थिति पर कौन आ रहा है?'

× × रास्ते में श्रीमती बोलीं—सब कपड़ों को धोकर नहाना। धानुक को छुआ है।'

'मेरे साथ रहकर यह मूर्खता नहीं चलेगी। साफ-सुथरा पढ़ा-लिखा लड़का है। क्या वह कुत्ते से गया-बीता है?'

× × घर बन्द था। हम लोगों को देखकर लालो चाबियों का गुच्छा लिए फुदकती आ पहुँची।

'लालो, तुम तुरन्त यहाँ से चली गई होगी ?'

'तुरन्त कैसे गई, बहुत देर तक पढ़ती रही। दो सज्जन भी आए थे।'

'नाम बता गए ?'

'जो पहले आए उनका नाम ज्ञान जी था। दूसरे वाले नाम नहीं बता गए।'

'कैसे थे वे ?'

'वे जब मुस्कराते थे तो उनके ओठ खूब फैल जाते थे और लगता था जैसे दोनों किनारों पर भीतर-भीतर जुड़े से है। काली-काली मोटी सी बीड़ी पी रहे थे। सफेद कमीज...'

'बस, बस, समझ गया। सेन गुप्ता होगा।'

'नाम नहीं बताया, चिट्ठी छोड़ गये हैं।'

चिट्ठी में बंगलाक्षरों में लिखा था—'माल अच्छा है, फिर कभी आऊँगा—निर्मल।'

दुष्ट।

दोनों भीतर चली गयीं। मैं अपने कर्मस्थल पर जाने की तैयारी करने लगा। लालो आकर द्वार से टिककर खड़ी हो गयी।

'भाई साहब...'

'ठहरो,...अच्छा, अभी बारह बजने में काफी देर है। ठीक है, भाई साहब कह सकती हो। अब बताओ क्या कहना है ?'

'बहनजी से एक शब्द का अर्थ पूछा, उन्होंने कहा भाई साहब से पूछो।'

'कौन सा शब्द है ?'

'सुहागरात।'

'प्रियम्, ए प्रियम्वदा !'

प्रियम्वदा पहले से ही किवाड़ से छिपी खड़ी थी, खिलखिला पड़ी।

'तुम यह क्या मजाक करती हो ?'

'मैं क्या जानूँ कि पन्द्रह साल की यह भिल्लू सचमुच नहीं जानती।'

'तुम दोनों बेवकूफ हो।'

लालो अपने घर भाग गयी।

छः

बहुत रात तक परेशान होकर समस्या का समाधान खोजता रहा, कुछ समझ में न आया। आज प्रातः बैठक में आते ही अलमारियों की ओर ध्यान गया तो प्रसन्न हो उठा। कई महीने की पत्र-पत्रिकाएँ एकत्र थीं। इनमें से उपयोगी लेख आदि फाड़कर एक ओर रखने लगा। पता नहीं कितनी देर तक व्यस्त रहा। प्रियम् चाय लाकर खड़ी हो गयी। 'आज क्या सनक सवार हो गई ?'

'रद्दी में बेचने के लिए कागज निकाल रहा हूँ। अभी मैंने लालो को आते देखा था। इतनी सवेरे क्यों आ गयी ?'

'महँदी पीस रही है, तीज है न ? मैंने उससे कहा कि जाओ, भाई साहब को चाय दे आओ। वह तैयार नहीं हुई।'

'क्यों ?'

'कहती है शरम लगती है।'

'अचानक शरम कैसी ?'

'उसे सुहागरात का अर्थ मालूम हो गया है।'

'किसने बताया ?'

'कालेज की सहेलियों से पूछकर जान लिया होगा। वह बिगड़ रही थी कि मुझे भाई साहब के सामने मूर्ख बनाया।'

'मुझे विश्वास नहीं होता कि आज की लड़कियाँ इतनी उम्र होने पर यह सब कुछ नहीं जानतीं। प्रियम्, तुम अपने से ही समझ लो। इसकी उम्र तक तो तुम गुरुघंटाल हो गयी होगी।'

'नहीं ही जानती होगी। हाई स्कूल घर में पढ़कर पास किया है। अब कालेज पढ़ने जाती है। अब तक लड़कियों से मिल न पाई होगी। इसलिए मालूम न होगा। सुनो, अब तो वह गुरुघंटाल हो रही है। कह रही थी कि लड़कियों से माँगकर एक किताब लाई है—'कोकसार।'

'कोकशास्त्र ?'

'हाँ, उसी में से कुछ पढ़कर आयी थी सो मुझे सुना रही थी।'

'तुम उसे रोक देना, ऐसी पुस्तकें न पढ़े।'

'ये किताबें बुरी होती हैं ?'

'हाँ, क्वाँरों के लिए।'

'और मेरे लिए ?'

'तुम्हें मैं ऐसे ही पढ़ा दूँगा।'

'हटो।'

'कहाँ हटूँ ?'

कुछ देर हम मौन रहे। न जाने क्या सोचकर उसने पूछा—

'क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते ?'

'न।'

'सच बताओ।'

'अच्छा, करता हूँ।'

'हाँ ऽऽ, ठीक बोलो।'

'अच्छा, तकिया उठा लाओ। उस पर सिर के बल खड़ा होकर कहता हूँ कि प्यार करता हूँ। तब विश्वास आ जायगा ?'

'मैं अगर मर जाऊँ तो फिर विवाह करोगे ?'

'निश्चय।'

'कितने दिन के बाद ?'

'छः महीने के बाद।'

'तुम तो मजाक करते रहते हो।'—मेरे हाथ से प्याला-प्लेट लेकर कुछ सकुचाते हुए बोली—'मेरे हाथ में महँदी लगा दोगे ?'

'महँदी लगाकर बैठोगी तो खाना कैसे बनेगा ?'

'तुम्हारे जाने के समय तक तैयार हो जायगा।'

हम दोनों भीतर गये। महँदी बटती हुई लालो ने मुस्कराकर सिर नीचा कर लिया। मैंने प्रियम् के हाथों में परिश्रम के साथ महँदी लगा दी। लालो से कहा—'ला तेरे भी लगा दें।'

'हमारे घरों में क्वाँरी लड़कियाँ महँदी थोड़े न लगाती हैं।'

'और कल जो शब्द पूछा था, उसका अर्थ पूछती हैं ?'

'मैं घर भाग जाऊँगी । बड़े आये, हाँ नहीं तो ।'

'चल, हाँ नहीं तो, खोल हथेली ।'

मैंने उसकी दोनों हथेलियों पर केवल 'ॐ' लिखकर नाखूनों में महँदी लगा दी ।

'भाई साहब, हम लोगों को हरी-हरी चूड़ियाँ ला दो । आज तीज है न ?'

'चूड़ीवाला निकले तो खरीद लेना, हाँ नहीं तो ।'

'ऊँ ऊँ ऽऽ ।'

मैंने रद्दी वाले को बुलाकर रद्दी दे दी । दस रुपये मिल गए । दो प्रियम् को चूड़ियों के लिए दे दिए ।

····दिन भर कार्य के पश्चात् लौटा तो तुरन्त ट्यूशन पर चला गया । वहाँ से लौटकर आते ही प्रियम् को लेकर स्क्रीनिंग कराने चला गया । फेफड़ों में कोई खराबी नहीं निकली । अब डॉक्टर चन्द्राबाई के पास जाना निरर्थक समझ एक अन्य परिचित डॉक्टर के यहाँ गया ।

पर्दे के भीतर जाकर डॉक्टर ने हम दोनों को बुलाया । प्रियम् को बेंच पर लिटाकर डॉक्टर परीक्षा करने लगा । 'ब्लाउज खोलो ।' प्रियम् सकपकाई । मैंने धीरे से कहा—'खोल दो ।'

डॉक्टर चोली के आसपास कभी हड्डी ठोंकता कभी स्टैथिस्कोप से हृदय की परीक्षा करता । कई मिनट की ठोंक-पीट के पश्चात् छुट्टी मिली । डॉ० चन्द्रा और स्क्रीनिंग की रिपोर्ट पढ़कर उसने कहा कि पेट की खराबी जान पड़ती है, स्टूल टैस्ट कराना होगा । दवाइयाँ लिख देता हूँ । इन्हें खिलाकर डॉक्टर सक्सेना पैथोलोजिस्ट के यहाँ प्रातः ही चले जाना । उनकी रिपोर्ट लेकर फिर आना ।

प्रियम् को रिक्शा से घर भेज दिया । स्वयं बाजार से दवाइयाँ लेने चला गया । कुछ पैसे छोड़कर दसों रुपए समाप्त हो गए ।

मन बुरी तरह विषाक्त हो गया । विवाह का सुख मिल रहा था । गृहस्थी के सुख की क्या कल्पनाएँ थीं और क्या मिल रहा था । अब कठिनाई यह थी कि कल स्टूल टैस्ट की फीस कहाँ से दूँगा । सोचा, कल

ट्यूशन वाले रुपए एडवांस में ले लूँगा। महीना समाप्त होने को है भी। परसों इसका टैस्ट करा दूँगा।

घर आने पर देखा, लता हारमोनियम बजा रही है। मुझे देखकर चहक उठी—'फूफाजी आ गए।'

मैं बुझा हुआ सा कुर्सी पर बैठ गया। साधारण शिष्टाचारवश लता के एकाध प्रश्न का उत्तर दे देता था, अन्यथा उसकी लम्बी-चौड़ी बातों में मुझे कोई रुचि नहीं थी।

बोली, 'फूफाजी ! गाना सुनाइए।'

'मुझे तो आता नहीं, तुम्हें सुनाना हो तो बिना भूमिका के सुना दो।'

उसने गाया—

'तोमाय आमि भूलिबो ना गो,
तोमार कथा रहिबे मने।'[1]

उसने अच्छा गाया था। बोली—'फूफाजी, आप दोनों को मम्मी ने बुलाया है।'

'कल-परसों कभी अवश्य आऊँगा।'

'चौराहे तक चलकर मुझे रिक्शा में बिठा दीजिए।'

चलते समय प्रियम् से बोली, 'बुआजी, टा···टा।'

प्रियम इस 'टाटा' शब्द से घबड़ा गई। कुछ न बोली। थोड़ी दूर चलकर लता फिर मुड़ी और उसने शरारत के साथ मुस्करा कर प्रियम् की ओर उँगलियों से ऐसे इशारा किया, जैसे कोई छोटे बच्चे को बुलाता है। इस बार जब वह बलखाती हुई सी घूमी तो उसकी दोनों चोटियाँ लहरा गयीं। उसके घने काले बाल कमर के काफी नीचे लटक रहे थे। बिना रिबन अथवा चोटी का प्रयोग करते हुए भी उसकी चोटियाँ अन्य स्त्रियों की चोटियों से लम्बी और घनी थीं।

'फूफा जी, आपके पीछे घर पर मैंने आपकी कुछ रचनाएँ पढ़ी हैं। कुछ नया लिखकर दिखाइए।'

'जब लिखूँगा तब दिखा दूँगा।'

---

[1] **तुम्हें मैं भूलूँगी नहीं। तुम्हारी बातें याद रहेंगी।**

रिक्शा कर दिया, बैठने लगी तो बोली, 'चलिए, घर तक आइए न। साथ-साथ बातें करते चलेंगे।'

'न, फिर आऊँगा।'

'टा—टा!'

'नमस्ते।'

...प्रियम् ने एक कापी मेरे हाथ में थमा दी। पूछा, 'यह क्या है?'

'लता दे गई है। उसने सौगन्ध देकर कहा था कि जब मैं चली जाऊँ तब फूफाजी को देना। कविताएँ हैं। जाँचने के लिए दे गई है।'

'सेन गुप्ता ने मेरी व्यर्थ प्रशंसा कर दी है। चलो, खाना लगाओ।'

मैंने कापी के पृष्ठ उलटे-पलटे। प्रथम कविता इस प्रकार थी:

क्या जाना नहीं तुमने?
बसंत में फूल खिलते हैं,
झरने उमड़ते हैं,
भौंरा क्यों फूल पर जाता है—
क्या जाना नहीं तुमने?

तुम्हारे गीत प्राण में छाए
तुम मेरे दिल में आए,
मैं कोयल बनकर पुकार रही
क्या सुना नहीं तुमने?

बस यही एक कविता बानगी-रूप में काफी थी। मैंने और नहीं पढ़ा।

...सोते समय प्रियम् ने कहा—'बुरा न मानो तो एक बात कहूँ?'

'कहो।'

'मैं अब किसी डॉक्टर के पास नहीं जाऊँगी।'

'क्या बात? ब्लाउज खुलवाया गया इसलिए?'

'कुछ हो, मैं जाऊँगी नहीं।'

'भला।'

मैं भी यही चाहता था। डॉक्टरों के पास जाने की मेरी सामर्थ्य नहीं थी। वह फिर बोली |

'बुरा न मानो तो एक बात और कहूँ।'

'वह भी कह लो।'

'कल रविवार है। भाभी यानी लता की माँ के पास चलो।'

'ठीक है, चलना। तुम भी बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।'

'कहो।'

'मच्छर ने लात मार दी तो मक्खी की एक आँख फूट गई।'

'कुपढ़ हूँ, चाहे जो कह लो।'

'सीधे-सीधे बात क्यों नहीं करतीं? हाँ ऽऽ—'बुरा न मानो, बुरा न मानो' लगाए रहती हो। मैं समझने लगता हूँ कि कोई भारी विपत्ति आ गई है या आने वाली है।'

सात

लता के पिता-माता बड़े ही मिलनसार और युवक-हृदय निकले। पिता श्री महेश अवस्थी चालीस की आयु तक नहीं पहुँचे थे। माँ तीस से एक-दो वर्ष ही ऊपर थीं। दोनों ही फैशनेबल जान पड़े। कुछ दिन यह परिवार पंजाब भी रह आया था। लता की माँ की सजावट में कुछ पंजाबीपन था। बहुत ही सजे हुए ड्राइंगरूम में हम बैठे थे। प्रियम् अत्यधिक शर्माई हुई बैठी थी। इन चहकते एवं प्रफुल्ल प्राणियों में वह जंगल-सी लग रही थी।

लता की माँ ने पूछा, 'बिटिया, तुम आती नहीं।'

'सरतारी[1] नहीं रह पाती।'

सम्मिलित अट्टहास्य''''प्रियम् बुरी तरह घबड़ा गई। मैं उसकी स्थिति को सँभालने के लिए शुद्ध कन्नौजी बोलने लगा। वैसे मैं भीतर-ही-भीतर प्रियम् और इस परिवार दोनों से ही चिढ़ रहा था।

१. फुरसत में।

एक छोटा सा बालक कमरे में आया। प्यारा-प्यारा गुड्डा सा बड़ा भला लग रहा था। लता का छोटा भाई था। पिता बोले, 'बेटा, ये फूफाजी हैं।'

बच्चे ने हाथ बढ़ा कर कहा—'गुड मार्निंग, फूफाजी !'

स्नेह-सहित हाथ थामते हुए मैंने कहा—'चिरंजीवी भव, वत्स !'

बच्चा मुँह देखने लगा। अवस्थी जी बच्चे पर गर्व करते हुए बोले—'शुक्लाजी, मैं इसे कॉन्वेंट में भेजता हूँ। यहाँ के स्कूलों में 'मैनर' नहीं सिखाया जाता।'

'भाई साहब, मैं आज तक यही न समझ सका मैनर होता क्या है ?'

'क्यों, आप तो यूनिवर्सिटी के ग्रैजुएट हैं।'

'मैंने इसलिए कहा कि मुझे यूनिवर्सिटी में सबसे अधिक शरारती और उच्छृंखल वही लड़के मिले जो कान्वेंट से आते हैं। हाँ, दो-तीन बातें वे अच्छी तरह से जानते है—टाई लगाना, गुडमार्निंग करना, डैडी-मम्मी कहना, शेक-हैंड करना और चबा-चबाकर अंग्रेज़ी बोलना।'

'नहीं जनाब, आप क्या कहते हैं ? कान्वेंट की पढ़ाई बहुत अच्छी होती है।'

'ठहरिए, हाथ कॅगन को आरसी क्या ? बेटा, तुम बता सकते हो राम कौन थे, किसके बेटे थे ?'

'राम के फादर का नाम नहीं मालूम। वह बड़ा जंगली आदमी था। उसने अपनी औरत को घर से निकाल दिया था। ईसू बड़ा नेक है। वह बड़ा रहमदिल है।'·····कहते-कहते बच्चे के नेत्र तरंगित होने लगे। मानों वह ईसू का बलिदान याद कर ममता से भर गया हो।

'देखा भाई साहब, अपने देश के इतिहास, धर्म और संस्कृति के प्रति क्या दृष्टिकोण दिया जा रहा है। मैं ईसा को पूर्ण सन्त मानता हूँ। उनके चरणों में श्रद्धानत हूँ, किन्तु मैं अपने देश के महापुरुष के प्रति ऐसे उद्‌गार नहीं सह सकता।'

'हाँ, यह जरूर सोचने की बात है। मुझे भी अपने रिलिजन पर 'प्रायड' है।'

'वह तो आपकी भाषा से प्रकट हो रहा है।'—मुझे लगा कि बात कड़ी हो गई है। सुधारता हुआ बोला—'मेरे कहने का मतलब है कि आपके बोलने के ढंग से आपके मन की बात प्रकट हो जाती है।'

'लेकिन शुक्ला बाबू, बात तो मैनर की है।'

'अपना-अपना दृष्टिकोण है। मैं अपने घर के बच्चों को ऐसा मैनर सिखाने से यही अच्छा समझता हूँ कि वे गँवार बने रह जाएँ।'

मैंने देखा, हम लोगों की बहस के बीच ही प्रियम् अपनी भाभी के साथ भीतर चली गई। बादल घिरते आ रहे थे। मेरी इच्छा होने लगी शीघ्र लौट चलें। लता बोली,'चलिए, आपको अपना स्टडीरूम दिखलाएँ।' हम आँगन पारकर एक छोटे से रूम में प्रविष्ट हुए ही थे कि रिमझिम शुरू हो गई। कमरा छोटा था, किन्तु लड़की ने खूब सजाया था। उसका कान्वेंट वाला भाई भी एक ओर बैठा तस्वीरें देख रहा था। उसकी छोटी मेज पर सूली पर चढ़े हुए ईसा की मूर्ति थी। पास ही मरा हुआ सुग्गा लकड़ी के स्टैंड पर खड़ा था।

लता ने बताया—'यह सुग्गा हमें बहुत पसन्द था। मर जाने पर भैया खूब रोया। पिताजी के एक मित्र ने मसाला लगाकर इसे खड़ा कर दिया है।'

सुग्गे में कोई विकृति नहीं आई थी। अकस्मात् देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह मुरदा है।

'फूफाजी, आपको मेरी कविताएँ कैसी लगीं ?'

'ठीक हैं, अभी छन्द का ज्ञान करो। अभ्यास किये जाओ, सफलता मिलेगी।'

'आज मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी।'

'तभी तो मैं आ गया। 'जा पर जाकर सत्य सनेहू।' '

उसने एक कहानी दिखलाई। कहानी में कुछ नहीं था। बस, प्रेम की लन्तरानियाँ और मजेदार कथोपकथन। प्रेमिका के एक कथन के नीचे रेखा खींचकर पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया गया था। वह पंक्ति थी—

'साहस हो तो मुझ पर जय-लाभ करो ।'

मेरे कहानी पढ़ लेने पर वह बोली, 'आप भी कुछ लिखिए। मेरी कापी पर अपनी कोई कविता लिख दीजिए।'

स्त्री भी पुरुष की ओर आकृष्ट होती है। अन्तर यह है कि पुरुष अपनी उल्टी-सीधी हरकतों से अपना प्यार प्रकट करने लगता है, किन्तु नारी प्यार का अनुभव करते हुए भी उसका प्रकटीकरण नहीं करती। ऐसे अवसर पर यदि पुरुष बढ़ावा न दे तो वह स्वयं आगे बहुत ही कम बढ़ती है। मुझे लगा लता प्यार-वार के मामले में अनाड़ी नहीं है। प्रथम आकर्षण के संकोच का उसमें अभाव है। वह मनोभाव प्रकट करने के हथकंडों से भी परिचित है तथा दूसरे को भी मार्ग सुझा सकती है। उसने बहुत हठ किया तो कहा—'लिखो तुम। मैं बोल देता हूँ—

छोड़ अटपटी वाणी सजनी, बोलो खुलकर बोल।
साहस है, जय करूँ तुम्हें, यदि मिले प्रीति अनमोल॥

'बस इतना ही आया और तो कुछ लिखा न सकूँगा।'

उसने सिर झुकाकर कहा—'आपका उद्देश्य तो इतने से ही पूरा हो गया।'

'उद्देश्य कैसा ?'

'आप जो कहना चाहते थे, दो पंक्तियों में ही कह गये।'

वह कुछ गम्भीर होकर खिड़की के बाहर वर्षा देखने लगी। मेरी ओर उसकी पीठ थी। बालों का जूड़ा मनोरम था। पतले झीने ब्लाउज के अन्दर कंचुकी एकदम स्पष्ट थी। कटि-देश तक दृष्टि आते ही मुझे सेन गुप्ता का कथन याद आया—'चलती है तो...'

मैं घूमकर बैठ गया। बोला, 'बुआ को बुलाओ। अब चलेंगे।'

आँखों में आँखें डालकर वह बोली, 'कैसे जायेंगे ? पानी बरस रहा है।'

फिर मौन।

'आप मुझे संस्कृत पढ़ा दिया करें तो कभी-कभी आ जाया करूँ।'

'पढ़ा दूँगा।'

पानी हल्का हुआ। मैं कमरे से बाहर आ गया। जब तक चाय-पान समाप्त हुआ, रिमझिम भी बन्द हो गई। हम चल पड़े। अवस्थीजी बच्चे से बोले, 'बेटा, तेरे फूफाजी पंडित आदमी हैं। इनसे 'बाई-बाई, टाटा' न करना। नमस्ते कहना।'

बच्चे ने नन्हे-नन्हे हाथ जोड़कर कहा—'नमस्ते।'

'देखिए भाई साहब, आप अन्याय कर रहे हैं। अपने लिए प्रणाम कराते होंगे। मेरे लिए नमस्ते कहला रहे हैं।'

अवस्थीजी हँस पड़े।

रिक्शा चल पड़ा। प्रियम् बोली—'भाभी सीधी हैं, मिजाज नहीं हैं।'

'और भाभी की पुत्री ?'

'मुझे उसका चबड़-चबड़ करना पसन्द नहीं है।'

हमारे घर पहुँचते ही लालो तश्तरी में कुछ लेकर आई।

'क्या लायी है री छोकरी ?'

'नीबू का अचार, अहा बड़ा बढ़िया है।'

प्रियम् अपने वस्त्र-आभूषण उतारने में व्यस्त हो गई। मैं मेज पर रखी हुई पांडुलिपियों में उलझ गया। गले में कुछ गिरा, उछल पड़ा। खिल-खिलाहट—'भाई साहब डर गये।'

प्रियम् का हार मेरे गले में था। शरारत सूझी।

'लालो, तुम्हारा पूरा नाम क्या है ?'

'ललिता।'

' 'परिणीता' उपन्यास पढ़ा है ?'

'न, पिक्चर देखी है।'

अकस्मात् उसे माल्य-दान की घटना याद आ गयी होगी, तभी धत् कह कर भाग गई।

× × × अभी तक मैं समझता रहा था कि पुरुष में ही यौन-विकृतियाँ होती हैं, अब मुझे ज्ञात हुआ कि स्त्रियों की स्थिति भी पर्याप्त भीषण एवं वीभत्स होती है। यह स्थिति जानने की कुंजी मुझे मिली प्रियम् के द्वारा। उसने अपनी सुनी हुई अनेक सत्य घटनाओं का उल्लेख किया।

पुरुषों से ये बातें ज्ञात न होतीं, परायी स्त्री बताती कैसे ! अपनी स्त्री से संकोच नहीं । अपनी जानकारी समाप्त करने के पश्चात् वह बोली—

'जानते हो, लालो आज क्या पूछ रही थी ?'

'मैंने ज्योतिष नहीं पढ़ी ।'

'पूछ रही थी चुम्बन करने पर कैसा लगता है ?'

'तुमने क्या कहा ?'

'मैंने कहा—वे कमरे में बैठे हैं, चूमकर देख आओ ।'

'तुम भी बड़ी दुष्ट हो । कहीं 'विष-वृक्ष' जैसा हाल न हो जाय, नहीं तो फिर रोओगी ।'

'तो तुम उसे 'विष-वृक्ष' की 'कुन्द' बनाओगे ?'

'मैं नहीं, तुम स्वयं बना दोगी ।'

प्रियम् को मैंने कई उपन्यास ला दिये थे, जिनमें विष-वृक्ष भी था ।

आठ

'मैं पढ़ी नहीं हूँ, इसलिए जब देखो मूर्ख कह देते हो । अगर किसी पढ़ी से ब्याह किया होता, तब भी क्या ऐसा व्यवहार करते ?'

टप-टप आँसू बरसने लग गए ।

मैंने एक बार उसे ऊपर से नीचे तक देखा, रेडियो बन्द कर दिया और पलंग पर लेट गया ।

वह जानती है कि मुझे आँसुओं और व्यर्थ की जिद से चिढ़ है किन्तु मानेगी नहीं ।

बात यह थी कि रेडियो पर रविवार के विशेष कार्यक्रम में आज दोपहर को नाटक का कार्यक्रम था । उसे नाटक सुनाने के लिए पास बिठा लिया । कठिन स्थल समझाता जाता । एक स्थान पर प्रश्न किया कि समझी या नहीं । वह हक्की-बक्की सी मुँह देखने लगी । मैंने थोड़ा झुँझला

कर कह दिया—'मूर्ख हो, इतना भी नहीं समझतीं ?'

और यह काण्ड हो गया।

यदि वह स्वयं योग्य होती तो मुझे पति के स्थान पर गुरु क्यों बनना पड़ता। जब गुरु बनना पड़ता है तो वह क्या मेरे मुँह से निकले हुए मूर्ख जैसे शब्द को भी नहीं सह सकती ?

मैं भूल जाना चाहता हूँ कि मेरा विवाह अयोग्य पत्नी से हुआ है और वह हमेशा मेरी याद ताजी रखना चाहती है कि वह सच ही मूर्ख है।

चौके के भीतर से बिड़-बिड़ सुनाई पड़ रही थी। बर्तन पटक-पटककर रख रही थी। दरवाजे से निकली तो किवाड़ लग गया, उसने किवाड़ जोर से भीड़ दिया। पैर से गिलास टकराया तो एक ठोकर और दी।

मैं बार-बार पढ़ने में मन लगाता, किन्तु उसके द्वारा जो आवाज़ें की जा रही थीं, वे सीधी आकर दिल में लगतीं।

मोढ़े पर बैठे-बैठे देर तक विचार-मग्न रहा। मेज पर जोर की आहट पाकर आँखें खोलीं तो देखा चाय का प्याला है। मैंने चुपचाप प्याले की ओर हाथ बढ़ाया। वह झँकार भरे स्वर में बोली—'मूर्ख तो हूँ लेकिन मैंने ऐसी जिन्दगी कभी नहीं बिताई, न घी-दूध, न कपड़े-लत्ते।'

इस बार उसकी जीभ ने मेरे दिल को बेध दिया। मैंने प्याला छोड़ दिया और मोढ़े में धँसकर आँखें बन्द कर लीं। मैं चाहता तो कड़ा उत्तर दे सकता था, किन्तु सोचा कि वह वास्तव में मूर्ख है, समझती नहीं। इससे क्या कहूँ !

पैरों पर गरम-गरम बूँदें गिरीं। आँखें खोलीं तो देखा वह झुककर प्रणाम कर रही है। मैंने सिर पकड़कर उठा लिया। बोली, 'मुझे माफ कर दो। तुम्हें मेरी कसम, चाय पी लो।'

मैंने चुपचाप चाय पी ली।

वह फिर काम में लग गई। ऐसी स्थिति में वह हँडिया-सा मुँह लटकाए काम करती रहती है। इस स्थिति में उसके मुख की यत्किंचित् सुन्दरता भी कुरूपता में बदल जाती है और उसकी आकृति बड़ी बेहूदी लगती है।

पढ़ते-लिखते न बना। बाहर निकल आया। जोड़े-के-जोड़े चहकते चले जा रहे थे। चारों ओर उल्लास था। केवल मैं ही मनमारे पिटे-पिल्ले सा चल रहा था। पार्क की एक बेंच पर जाकर बैठ गया। पैरों में इतनी ताकत न जान पड़ी कि उठकर चहलकदमी कर सकूँ। धीरे-धीरे अँधेरा झुकने लगा। आँखें जोर से मींच लीं। आँसुओं की पतली धारें कमीज का कालर भिगोने लगीं। रूमाल से रगड़कर आँख-नाक साफकर फिर घर आ गया।

दो-ढाई रोटी खाकर लेट गया। आज पैर नहीं दबाये गए। आदेश हुआ—'बैठ जाओ।' बैठ गया। सात बार पैर छूकर माथा रखा गया। उठा दिया।

'मुझसे नाराज हो ?'

'न।'

'तो बोलते क्यों नहीं ?'

'बोलता तो हूँ।'

'पहले जैसा कहाँ बोलते हो ?'

'तुम जितना बोलती हो, उतना मैं भी बोल देता हूँ। अधिक बोलने से खतरा है।'

'खतरा क्यों है ?'

'मैं नाराज होता हूँ तो मारता नहीं,गन्दी गाली नहीं देता। बस अधिक से अधिक मूर्ख या पागल कह देता हूँ। अपने मन की भावना से निकला हुआ मूर्ख शब्द भी तुम बरदाश्त नही कर सकतीं तो मुझे सावधान रहना पड़ेगा। कम बोलूँगा तो यह नौबत नहीं आयेगी।'

वह ठंडी साँस भरकर बोली, 'जो मन में आये करो।'

वह काफी रात तक सो न सकी, शायद सिसकती भी रही।

'''मैं रात-भर सोचता रहा,बेकार में ही हम लोग जिद किये हैं। वह मेरे आश्रित है। मुझे उसकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना चाहिए। आखिर को मेरी पत्नी है। मुझसे ही न लड़े-झगड़ेगी तो और किससे !

प्रातः चित्त कुछ हल्का था। वह सिर झुकाये बोली—

'एक बात कहूँ ?'

'कहो, बुरा न मानूँगा।'

'आज खाना बना लो।'

'क्यों ?'

'बस बना लो।'

'आज ही बनाऊँ या दो दिन और ?'

'दो दिन और।'

खाना बनाया, नौकरी पर गया, ट्यूशन किये और जब रात को लौटा तो थककर इतना चूर था कि रसोई में बलिदान होने की सामर्थ्य नहीं थी। घर आकर देखा, रसोई से धुआँ निकल रहा है।

'यह क्या ?'

'खाना बन रहा है।'

'कौन बना रहा है ?'

'लालो ?'

'लालो तुम्हारे चौके में कैसे ?'

'कच्चा खाना नहीं बना रही है, पराँठा बना रही है।'

आग के पास बैठे रहने से लालो का मुँह लाल हो गया था। माथे पर पसीने की बूँदें झलक आयी थीं। मुझे खिलाने के उत्साह में उड़ी-उड़ी सी फिरती थी। जल्दी के कारण चुन्नी सँभाल न पाती—और'''

मुझे विद्यापति की पंक्तियाँ याद आने लगीं—

'चउँकि चलए खने खन चलु मन्द।
मनमथ-पाठ पहिल अनुबन्ध॥
हिरदय मुकुल हेरि-हेरि थोर।
खने आँचर दए खने होए भोर॥
बाला सैसव तारुन भेट।
लखए न पारिअ जेठ कनेठ॥'

'प्रियम, इसके ऊपर पंखा झल दो, पसीने में नहा गयी है।'

'देखा, कितना ध्यान है। मेरी चिन्ता कभी न की।'

'आखिर को मैं उसका जीजा हूँ।'

'क्यों लालो, ये जीजा हैं। इस समय तो तुम मेरी सारी ड्यूटी लिए हो। खैर, कुछ हो, लालो को देखकर ये प्रसन्न तो हुए, नहीं तो कल से मुँह फुलाये थे।'

'''शाम को लालो बेला के फूल दे गयी।

'''अब तक लालो के प्रति मेरे मन में कोई विशेष विचार न था। वह कभी लड़ैती बहन जैसी जान पड़ती तो कभी छोटी साली जैसी। मेरे कोई साली नहीं थी, अतएव इसी से हँस-खेल लेता। अब मुझे लगा कि प्रियम् हम दोनों पर सन्देह करती है। वह हम दोनों पर पहरा रखती है। मुझे यह स्थिति अपमानजनक लगी। मन-ही-मन जल-भुनकर खाक होने लगा।

नौ

पाण्डुलिपियों एवं तत्सम्बन्धी-साहित्य का अध्ययन करते-करते मैं इस बात की भी खोज करने लगा कि समस्त भारत में सांस्कृतिक-एकता कैसे प्रारम्भ हुई! मीलों विस्तार वाले इतने बड़े देश को एक सूत्र में बाँधने वाले लोग और नियम कौन थे! पूर्वी देशों का इतिहास पढ़ा। असम, बंग और उत्कल की विकट साधनाएँ पढ़ीं। नरबलि लेने वाली देवियों की उपासना का वर्णन पढ़ा—जिनकी पूजा मद्य-माँस के साथ होती थी, जिनके उपासक भ्रष्ट जीवन-यापन करते थे। यहाँ के राजाओं ने अपने प्रदेशों से अनार्यत्व दूर करने के लिए कान्यकुब्ज प्रदेश के ब्राह्मणों को बुलाया।

पूर्वांचल का गगन यज्ञ-धूम से सुवासित हो गया। वेद-मंत्रों की गूँज उठी। ब्रह्म-बेला में नदियाँ स्नानार्थी ब्राह्मणों के स्तवन से मुखरित हो उठीं। सारे समाज में आपाद-मस्तक परिवर्तन आया। देवी ने भी मांस-मद्य छोड़ दिया। वे भक्त-वत्सला दुर्गा हो गयीं। उपासक भी सात्विक हो गए। पूजन-सामग्री में दधि, अक्षत, दूर्वा, नारियल, पुष्प-जैसी वस्तुओं का प्रयोग बढ़ने लगा। सारा जनसमुदाय जातियों में विभक्त होकर शुद्धाचार-

परायण होने लगा।

बंगाल में बौद्ध राजाओं ने शताब्दियों तक राज्य किया। ये बौद्ध राजा भी आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक ब्राह्मणों को अपना प्रधान-मंत्री बनाकर समाज की व्यवस्थाओं का पालन कराते रहे।

आज भी इन प्रदेशों में पाये जाने वाले ब्राह्मण अपने को कान्यकुब्ज-प्रदेश से आया हुआ बताते हैं।

अतीत में डूबकर मैं अनेक कल्पनाएँ करने लगा। या तो मैं ब्राह्मण कहलाना सदा-सर्वदा के लिए बन्द कर दूँगा, अन्यथा घोर तप कर कष्ट उठाते हुए समाज को शुद्ध संस्कार दूँगा। ब्राह्मण तभी ब्राह्मण है और तभी पूज्य है, जब उसकी तपःशक्ति समाज के कल्याण में लगी हो।

× × कुर्सी के हत्थे पर दृष्टि गई। हरसिंगार के फूलों की माला थी। लालो प्रायः रोज बेला एवं हरसिंगार के फूल दे जाती है। कभी-कभी माला भी लाती है। पिछले तीन-चार दिनों में इतना व्यस्त रहा हूँ कि मैंने किसी ओर भी ध्यान नहीं दिया। एक दिन प्रियम् ने बताया कि लालो कह रही थी उसे यहाँ अच्छा नहीं लगता। मैंने प्रियम् से पूछा—

'क्यों ऐसा क्यों ?'

'तुम पढ़ते रहते हो, जीजा बनकर छेड़ते नहीं। वह चक्कर लगाती रहती है। एक दिन कह रही थी—दरवाजे पर पर्दा क्यों डाल देते हैं। मेरे घर के झरोखे से दिखाई नहीं पड़ते।'

'वह सरल और मूर्ख है।'

'सो तो है। उस दिन 'अर्चना' में तुम्हारी जो कविता छपी थी—'प्रिय बताऊँ प्यार कैसा !' उसे देख पूछने लगी, यह कविता किस पर लिखी गई है। मैंने बता दिया कि उसी के ऊपर। वह पत्रिका ले गई कि घर जाकर पढ़ूँगी।'

...लालो आ रही थी। वह पत्रिका मेरी मेज पर धीरे से रखकर भीतर चली गई। पत्रिका फूली-फूली सी लगी, उसके भीतर कुछ था। खोला, बेला के फूल वहाँ रखे थे, जिस पृष्ठ पर मेरी कविता प्रकाशित हुई थी।

मैंने फिर हर्रसिंगार की मुरझाई हुई माला की ओर देखा। कल मैं इस माला पर मुग्ध हुआ था। इसकी मीठी-मीठी गन्ध साँसों में भर गई थी। इसे सँभालकर पहना, उतारा और सँभालकर रख दिया था। आज प्रातः देखता हूँ तो लाल डंठल शेष रह गए हैं। फूल मुरझा गए हैं, बुरी तरह मिसले हुए हैं। तीन-चार दिन बीतने पर क्या मुझे इस माला का ध्यान भी रह जाएगा ?

किन्तु फूल तो नित्य फूलते हैं, नित्य अपनी सुवास से साँसें सुरभित करते हैं। इनकी आकुल गन्ध प्राणों को मतवाला कर देती है।

नवयौवन-सम्पन्ना लालो हरसिंगार की माला की तरह ताजी और सुगन्धित है; किन्तु कब तक ? उसकी ताजगी और सुगन्ध चले जाने पर क्या होगा ! लालो भी तो नित्य हैं। एक गई तो दूसरी आएँगी। यह क्रम भी फूलों के विकास सा नित्य है।

मेरे मन में यह घोर विरोधा-भास कैसा ?

एक ओर ग्रन्थों में डूबकर इच्छा होती है कि सर्वस्वान्त होकर केवल धर्म-प्रचार में जीवन-यापन कर दूँ। दूसरी ओर हरसिंगार की ताजगी और खुशबू पर प्रलुब्ध होता हूँ।

संन्यास और विलास एक साथ !

···लालो पुस्तक लेकर कुछ पूछने आई। मुझे लगा प्रियम् हमारे ऊपर पहरा लगाये है। विवाह के पूर्व तक मेरे मन में लालसाएँ रही भी होंगी तो अत्यधिक क्षीणावस्था में, किन्तु अब कुछ विषम स्थितियों के कारण मैं विद्रोही-सा होने लगा।

प्रियम् की सजगता मुझे चुनौती देती सी जान पड़ी। मुझे अपने चरित्र और बुद्धि का अपमान असह्य जान पड़ा। तुरन्त एक कागज पर कुछ लिख कर उसकी तह बनाई और लालो के पास फेंक दिया। वह डरकर चिट्ठी की ओर से मुँह तिरछा घुमाकर बैठ गई। प्रियम् तुरन्त कमरे में घुस आई और उसने वह चिट्ठी उठा ली। लालो घबड़ाकर श्वेत पड़ गई। प्रियम् ने चिट्ठी पढ़कर फेंक दी। मैं ठठाकर हँस पड़ा। चिट्ठी में लिखा था—'राम-राम, जय-जय राम, सदा सत्य बोलो। ओ३म् श्री गणेशजी सदा सहाय।

किसी पर नाहक सन्देह मत करो।'

लालो को भी जोर से पढ़कर सुना दिया।

× × मैंने बायरन की लंपटता की कहानियाँ पढ़ी-सुनी थीं, किन्तु उसकी लिखी कविताएँ नहीं पढ़ी थीं। पुस्तकालय से उसका कविता-संग्रह लाकर पढ़ गया। विदेशी उपन्यासों का पढ़ना प्रारंभ किया। मैंने एक ओर लालो के सामने आना बन्द कर दिया और दूसरी ओर गंभीर ग्रन्थों का अध्ययन भी स्थगित कर दिया। 'मदाम बावरी' पढ़ा तो लगा इसकी जैसी स्थिति तो मेरी भी है। सामरसेट माम के सभी उपन्यास पढ़ गया। लिजा और लालो में साम्य दिखाई पड़ा। किसी ओरेलिया के प्रति मेकियावेली बनने की उग्र लालसा जागने लगी। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की तरह वर्जित प्रेम की उष्णता अधिक आकर्षक लगने लगी।

यह परिवर्तन शुभ था या अशुभ, क्यों हुआ—मै नहीं जानता; किन्तु दिन-रात एक अतृप्त प्यास का अनुभव करता रहा।

× × एक दिन सायंकाल लता आ धमकी। उसने हारमोनियम पर कई गीत सुनाए। बोली, 'आपका बाजा ठीक नहीं है, कहाँ से लिया था ?'

'गड़बड़झाला मार्केट से।'

'तभी। अच्छा, अब आप भी एक गीत सुनाइए।'

पहले तो तैयार नहीं हुआ। बहुत हठ करने पर हारमोनियम उठाया। मैंने महसूस किया, प्रियम् रसोई घर से ही मेरे ऊपर निगाह रखे है। यह बुरी तरह हीनता-ग्रन्थ से ग्रस्त थी। उसे सन्देह होने लगा कि कोई भी सुंदर शिक्षित लड़की मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। मैंने चिढ़कर दुष्टतापूर्वक एक गीत गढ़ लिया और इसे अपने एक पूर्व-परिचित राग के स्वरों पर फिट कर गाने लगा। मुझे केवल दो-एक राग आते हैं वह भी अशुद्ध। यहाँ शुद्धि-अशुद्धि कौन देखता है। गीत तो माध्यम थे।

प्रिये, तुम प्राणों की रानी।
साँवरी सूरत, मोहनी मूरत, मेरे मन में आन समाई,
बिना तिहारे जी न सकूँगा······················।' आदि।

लता धीमे कण्ठ से बोली, 'आपने ऐसा गीत क्यों सुनाया ?'

'क्योंकि तुम साँवरी और मोहनी हो।'

वह उठकर प्रियम् के पास चली गई। हम तीनों चाय पर एक साथ बैठे। लता निर्बन्ध होकर अपने कालेज के कार्यक्रमों के विषय में बताने लगी। वह उसी प्रकार की बातें कर रही थी, जिसे प्रियम् चबड़-चबड़ करना कहती है। चाय पीते हुए ही उसने मेरी मेज से अखबार खींचकर उसके कोने पर लिखी पंक्तियों की ओर देखते हुए कहा, 'क्या आपने कविता लिखी है ?'

कविता की ही पंक्तियाँ थीं—मेरी अपनी नहीं, बायरन की। मुझे बायरन की कविता Well thou art happy (वैल दाऊ आर्ट हैपी) पूरी-की-पूरी याद थी। उसी के दो स्तवक (stanza) इस पर लिखे हुए थे। कवि की भेंट अपनी पूर्व-प्रेमिका से हुई। इस समय तक वह किसी की पत्नी और एक शिशु की जननी बन चुकी थी। उसके शिशु को देखकर कवि के मन में जो उद्‌गार उठे वही इस '**वैल दाऊ आर्ट हैपी**' कविता में व्यक्त थे। वे दो स्तवक इस प्रकार थे—

Well Thou Art Happy.
When late I saw thy favourite child
I thought my jealous heart would break,
But when the unconscious infant smiled
I kissed it for its mother's sake.

I kissed it and repress'd my sighs
Its father in its face to see;
But then it has its mother's eyes,
And they were all to love and me.

आज लता को रिक्शा-स्टैंड तक भेजने चला तो प्रियम् खुश नहीं जान पड़ी। रिक्शा तयकर लौटने लगा तो लता ने कहा—

'आइए न, घर तक पहुँचा दीजिए।'

मैं भी बैठ गया। हमारे कन्धे परस्पर मिले, फिर हम एक-दूसरे से धीरे-धीरे सट गए। मैं जो वाक्य बोलना चाहता था, वह न तो सत्य था और न शुभ ही। क्षणिक उन्माद अवश्य था, यह मैं उस समय भी अच्छी

तरह समझ रहा था। मैंने उसकी हथेली पर अपनी हथेली रखकर किंचित् काँपते स्वर में कहा—'आई लव यू (मैं तुम्हें प्यार करता हूँ)।'

वह तुरन्त बोली, 'देखो, हमें बुआ का ध्यान रखना चाहिए। उनके प्रति अन्याय होगा।'

'मुझसे अन्याय न होगा। उसका प्राप्य उसे मिलेगा।'

लता की हथेली में मेरा हाथ नरमी के साथ दबा, फिर उसने अपना हाथ धीरे-धीरे खींच लिया। मैं रिक्शा रोककर उतर पड़ा। मार्ग में सोचा—मैं जो करना चाहता हूँ नहीं कर पाता—जो नहीं करना चाहिए, करने लगा हूँ। प्रतिक्रिया और हठ के कारण कोई कार्य शुभ नहीं हो सकता। अत्यधिक ग्लानि हुई। शरीर और वस्त्रों से पर-नारी का स्पर्श हुआ था, घर आकर सब कपड़े धो डाले, स्नान कर लिया। प्रियम् को बता दिया कि मैं मैला लेकर जाते हुए एक भंगी से टकरा गया था।

रात को पैर दबाते हुए प्रियम् ने कहा—'एक बात कहूँ ?'

'कहो।'

'मैं भी गाना सीखूँगी।'

'सच। लालो के घर के बगल में ही तो संगीत का एक छोटा-सा स्कूल है। अच्छा नहीं है, किन्तु कुछ न जानने से तो कुछ जानना अच्छा है। चलो तुम्हारा नाम कल ही लिखा दें। एक दिन छोड़कर क्लास होगा।'

'मैं दो चोटियाँ बनाया करूँ तो बुरा तो न मानोगे ?'

'बिल्कुल नहीं, तीन बनाओगी तो मानूँगा।'

'तुम तो मेरा मजाक बनाते रहते हो।'

× × लालो का भाई सुरेश आ गया। ऐक्टरों जैसे बाल, चमकीली बुश-शर्ट, ढीला और ऊँचा पैंट, चलता तो मानों रास्ते में क्रिकेट की गेंद फेंकता जाता। कभी-कभी सायकिल पर माउथ-आर्गन बजाता हुआ निकलता।

'कहो सुरेश बाबू ! कैसे ?'

'अगर डिस्टर्बेंस न हो तो क्रिकेट की खबरें सुनना चाहता हूँ।'

'हाँ, हाँ, शौक से सुनिए।'

किन्तु डिस्टर्बेंस हुआ। रेडियो बोलने लगा, तो मैं पढ़ न सका। कुछ

इधर-उधर की सोचते हुए लता के विषय में लीन हो गया। कल का व्यव-हार याद आया और आज प्रातः का। वह कल पर्स यहीं भूल गई थी। उसके घर पर देने गया तो सामने ही नहीं आई। माँ ने बुलाया, 'देख फूफाजी आए हैं।' वह वहीं से गुर्रा कर बोली—'आए होंगे। मुझे नींद लगी है।' उसकी माँ बोली थी, 'बुरा न मानिएगा। वह कुछ है ही ऐसे स्वभाव की।' मैं हँसकर उठ आया था।

क्या बात, क्या कल के व्यवहार से वह नाराज हो गई? आखिर है तो भारतीय कन्या। यदि ऐसा है तो मुझे प्रसन्नता होगी। किन्तु हरकतों की शुरुआत तो उधर से ही हुई थी। मैं तो उसे प्रेम के क्षेत्र की खिलाड़िन समझता हूँ। इसके पूर्व कम से कम वह एक अनुभव अवश्य कर चुकी होगी।

सुरेश बोला, 'भाई साहब, यह इंडिया की टीम बड़ी फजीहत कराती है। अरे गुप्ते से कैच लेते न बना।'

वह पंजों के बल फर्श पर बैठकर बोला, 'देखिए, गुप्ते ऐसे बैठा और इस तरह गेंद पकड़ी। अगर कहीं ऐसे पकड़ी होती, तो कैसे गिरती? फुलिश, थोड़ा सा आगे झुक गया और गेंद निकल गई।'

'सुरेश बाबू, तुम तो क्रिकेट के पूरे उस्ताद जान पड़ते हो। जरा बताओ तो सही, इन पर काफी खर्च किया जाता होगा।'

'अरे साहब, लाखों रुपए खा जाते हैं ये। यह लार्ड लोगों का खेल है, टाइम और पैसा दोनों खूब लगता है।'

'जब इतना पैसा खर्च होता है तो इस खेल से लाभ भी खूब होगा।'

'जरूर, देखा आपने कैसा प्रचार हुआ है कि गली-गली, पार्क-पार्क में लड़के क्रिकेट खेलते नजर आते हैं।'

'हाँ, वह तो मैंने देखा है। कुछ तो यूनिवर्सिटी जाते समय यों ही हवा में हाथ लहराते जाते हैं, जैसे कि बॉलिंग कर रहे हों। लेकिन सुरेश बाबू, बच्चों में इतना प्रचार होने से देश को क्या लाभ हुआ?'

'क्यों, लाभ क्यों नहीं, बहुत लाभ है?'

'क्या लाभ है, वही तो पूछ रहा हूँ।'

'साहब, अच्छे-अच्छे खिलाड़ी तैयार होते हैं।'

'तो इससे क्या हुआ ?'

'इससे''''''इससे देश का नाम होता है ।'

'अगर खिलाड़ी न हों तो''' ।'

'तो देश का नाम''''''' सुरेश चुप कर गया ।

'अच्छा, ठीक। क्या क्रिकेट के खेल के पहले कोई भारत को जानता नहीं था ?'

'जानता क्यों नहीं था लेकिन'''बात ऐसी है कि नया जमाना है। कुछ खूसट लोग इस खेल को पसन्द नहीं करते। चाहते हैं कि बन्द कर दिया जाय।'

'मैं नहीं जानता कि मैं भी उन खूसट लोगों में हूँ कि नहीं, किन्तु इतना अवश्य सोचना चाहता हूँ कि जब हमारे देश के लोगों का ध्यान, समय और पैसा इतनी अधिक मात्रा में खींचा जा रहा है'''।'

सुरेश बीच में ही बात काटकर बोलने लगा—

'हाँ भाई साहब, मैच होते हैं तो लोग दो-दो सौ मील की दूरी से चले आते हैं। कुछ तो कलकत्ता-मद्रास तक जा पहुँचते हैं। क्या जोश रहता है, कोई शंख-घड़ियाल बजाता है, कोई बिगुल'''' ।'

'और कोई खुद ही गधे-सा रेंकता है। लोग दिन-दिन-भर बैठे अपना टिफिन कैरियर बाँधे काठ के उल्लुओं से फुदकते रहते हैं। पिछली बार कानपुर की अदालतें भी बन्द हो गयी थीं। बेचारे तीस-तीस मील दूर के किसान तारीख पर दौड़े आए, यहाँ अदालतें बन्द। बेचारों का कितना नुकसान हुआ।'

'तो क्या आप चाहते हैं, खेल बन्द कर दिया जाय ?'

'न, कोई खेल बन्द न किया जाय, किन्तु यह देखना है कि देश के सामने किस चीज़ को महत्ता दी जाय—इम्पोर्टैन्स दी जाय।'

'किस चीज को इम्पोर्टैन्स दी जाय ?'

'देश के सामने सबसे बड़ी समस्या है राष्ट्रीय एकता की। पहले इसकी स्थापना हो।'

लता का नौकर एक लिफाफा लाया था, मुझे देकर बोला—'बीबी-जी ने भेजा है और जवाब माँगा है। लिखा था—

प्यारी बुआजी, कल हमारे कालेज में एक कवि-सम्मेलन है। अवश्य आइयेगा। फूफाजी को भी साथ लाइएगा। यदि कोई त्रुटि हुई हो तो फूफाजी क्षमा कर दें। स्नेह पात्री—लता।'

मैंने लिखकर दे दिया—'चेष्टा करूँगा।'

अब मेरे विचार की धारा मुड़ गई। बहस का मूड नहीं रह गया। सुरेश भी सीलोन के गानों में मस्त हो गया।

लता ने पत्र द्वारा स्पष्ट कर दिया था कि प्रातःकाल के व्यवहार के प्रति उसे खेद है। अवश्य ही लज्जा के कारण वह सामने नहीं आई। इसका यह अर्थ नहीं कि वह मेरी ओर से उदासीन है। इस समय यदि मैं चाहूँ तो योरुपीय उपन्यासों का नायक आसानी से बन सकता हूँ। कल का अपना स्नान-प्रक्षालन याद आया। दृढ़ प्रतिज्ञा की—अब इसके आगे दुर्बल न बनूँगा।

झूठ नहीं बोलूँगा, प्रतिज्ञा के बाद रात को बेचैनी रही। यह मूर्खता है। सेन गुप्ता का कथन सत्य है कि 'मनेर मानुष' खंड-खंड कर कईयों में स्थित है, इसलिए जहाँ मिले, लूटो। सत्य अविरोध होता है। मैं सेन गुप्ता के इस दृष्टिकोण से पूर्णतः सम्मत नहीं हो पाता, फिर इसमें अवश्य ही पूर्ण सत्य का अभाव है।

स्वभाव का बड़ा हठी हूँ—यह मेरी विशेषता है और दुर्बलता भी। कुछ हो, लता कितना भी क्यों न खींचे, अब नहीं झुकूँगा, नहीं झुकूँगा।

सोचता जाता था और बीच-बीच में सुरेश से भी बातचीत करता जाता था। एक प्रकार से वही बोल रहा था। क्रिकेट के खिलाड़ियों एवं सिनेमा-स्टारों के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ उसे ज्ञात थीं। अपनी जानकारी का वह गर्व-सहित परिचय दे रहा था।

मैंने भोलेपन के साथ प्रश्न किया—'क्यों भाई, कुन्ती अर्जुन की कौन थी?'

'अर्जुन की 'वाइफ' थी।'

'तुम तो शायद बी० ए० पार्ट टू में आए हो ?'

'जी हाँ।'

'हिन्दी ली है ?'

'न, इंटर में तो पढ़ी है।'

'कबीर कैसा लगा ?'

'उनकी कृष्ण-भक्ति की कविताएँ अच्छी हैं।'

दस

श्रावणी की छुट्टी थी। मजे में लेटा था। लालो राखी लेकर आई।

'भाई साहब, हम राखी बाँधेंगे।'

बड़ी कठिनाई में पड़ गया। मैं निश्चय कर चुका हूँ कि अपनी सगी बहिन को छोड़कर किसी से भी राखी नहीं बँधाऊँगा। राखी के पीछे जो पवित्र इतिहास है मैं उसका आदर करता हूँ। कर्णावती की राखी की लाज रखने वाले हुमायूँ जैसे भाई के आगे मैं श्रद्धानत हूँ। मैंने अपनी कठिनाई उसके सामने रखी और कह दिया कि हठ से मैं किसी प्रकार भी टल नहीं सकता।

वह भी परेशान-सी बोली, 'फिर मैं घर जाकर क्या कहूँगी ?'

'लाओ तुम राखी दे दो। मैं अपनी कलम में बाँध लेता हूँ। आज से तुम्हारी राखी बँधे कलम से मैं एक नई पुस्तक लिखने जा रहा हूँ।'

राखी मेज पर रखकर वह प्रियम् के पास चली गई।

आज का यह रक्षा-बन्धन पर्व न जाने कैसा था। आज के दिन ऐसी तीन घटनाएँ घट गयीं जो एकदम आकस्मिक थीं। मैं इनके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। इनमें से एक घटना ने मुझे राम के मर्यादावादी पथ से बुरी तरह डिगा दिया, जिसके स्मरण-मात्र से मुझे ग्लानि का अनुभव होता है।

कल शाम से ही प्रियम् अस्वस्थ थी। उसे जुकाम हो गया था। शायद हल्का बुखार भी था। अगस्त मास-भर उसे लगातार हल्का-हल्का टेम्परेचर रहा था। मैंने कल भी कहा था कि तकलीफ है तो भोजन न बनाओ, मैं बना लूँगा। वह बोली, नहीं और रोज की तरह काम करती रही। सवेरे उसके दोनों नेत्रों से आँसू भर रहे थे। मुँह पर असह्य वेदना की छाप थी। फिर कहा, 'रहने दो, आज काम न करो, तुम्हारी स्थिति ठीक नहीं है।'

'मुझे हुआ ही क्या है? आँसू जरूर आज बहुत बह रहे हैं। खाना तो बना लूँगी। पक्का खाना है। लालो सहायता कर देगी।'

खाना बन गया। वह चूल्हे पर साग चढ़ाकर मेरे पास बैठ गई। रेवा घोष और लता आ गयीं। लता ने आते ही अभियोग लगाना शुरू किया। कवि-सम्मेलन में मैं नहीं गया था, इसलिए वह बहुत असन्तुष्ट थी। प्रियम् को देखकर वह बोली—

'बुआजी, आज उदास क्यों हैं?'

'उन्हें जुकाम हो गया है।'

'देखिए फूफाजी, आज मीरा का एक गीत सुनाऊँ। आपने रेडियो पर सुना होगा—

श्यामसुन्दर मोरी बहियाँ गहो ना।
मैं तो नारि पराये घर की मोरे भरोसे नन्दलाल रहो ना।।

मुझे रिक्शा वाली घटना याद आने लगी। अपना मन बरबस उधर से खींच आँखें बन्द कर और कुछ सोचने लगा। मुझे लगा मेरे हाथ पर पतंगा बैठा है। तुरन्त हाथ झटका। रेवा की कलाई एवं चोटी से मेरा हाथ टकरा गया। देखा, कलाई पर लालो वाली राखी बँधी थी।

'लाइए, अब ठीक से बाँध दूँ। एक ही गाँठ तो लगी है।'—कहकर रेवा गाँठ लगाने में लग गई।

'रेवा, तुमने यह क्या किया?'

'क्यों, क्या पाप किया?'

'नहीं, मेरी प्रतिज्ञा है कि सगी बहिन को छोड़कर किसी से राखी नहीं बँधाऊँगा।'

'तब आप कायर हैं।'

'न, कभी नहीं। मैं इसका आदर करता हूं इसलिए।'—फिर मैंने यज्ञोपवीत हाथ में लेकर कहा, 'देखो, तुम्हारी भाषा की एक उक्ति को दुहराता हूँ—'बामुनेर बौन पोंइताओ चेये बड़ो। पोंइता थाके गलाय, बौन थाके माथाय।' मैं अपनी बहिन में सीता, सावित्री, दमयंती और लक्ष्मीबाई के गुण देखना चाहता हूँ।'

रेवा ने झुककर मेरे पैर छू लिए—'मैंने तो मजाक में राखी बाँध दी थी। दादा, मैं क्या जानूं तुम इतनी गंभीरता से लोगे।'

'खैर जो हुआ, अच्छा हुआ।'

'फ़ूफाजी, आप बॅंगला में क्या कह गए, हिन्दी में बताइए।'

'ब्राह्मण की बहन उसके जनेऊ से भी बड़ी है। जनेऊ रहता है गले में और बहन रहती है माथे पर।'

यह थी आज की प्रथम घटना।

···प्रियम् भीतर गई, साथ में दोनों लड़कियाँ भी लग गयीं। थोड़ी देर में प्रियम् का ऊंचा स्वर सुनकर मैं भी भीतर आ गया। देखा रसोई के द्वार पर रास्ता रोके खड़ी है प्रियम् और बलात् घुसने का प्रयास कर रही है लता। प्रियम् कह रही है कि बिना हाथ-पाँव धोये मैं रसोई में नहीं आने दूंगी।

'फूफाजी, मैं यह पाखंड नहीं मानती।'

'मत मानो, किन्तु तुम किसी पर अपना मत लाद नहीं सकतीं। फिर स्वास्थ्य और स्वच्छता की दृष्टि से भी तो इसका मूल्य है।'

'यह रूढ़ि है।'

'विदा के समय 'टा टा' और 'बाई बाई' कहना भी तो रूढ़ि है। अंतर इतना है कि एक देशी है और दूसरी विदेशी। तुम्हारे पापा गर्मी में भी केवल कमीज पर टाई लटकाए रहते हैं, यह क्या है?'

'कुछ हो फूफाजी, आज तो मैं अन्दर जाऊँगी।'

'Get back, I say.'—मैं गरज उठा।

लता चुप लौट पड़ी और चप्पल पहनकर बाहर निकल गई। मैंने और

रेवा ने समझाना चाहा। वह नहीं मानी।

यह थी दूसरी घटना। यहाँ यह और बता दूँ कि दो-तीन मास बाद ही उसका विवाह हो गया। वह दुबारा मेरे यहाँ नहीं आई। विवाह में गया था, एक बार दिखाई पड़ी। बस नमस्ते कर चली गई।

....तीसरी घटना का सम्बन्ध प्रियम् के मस्तिष्क से है। इसने ही मेरे जीवन में एक मोड़ ला दिया था, जिसके कारण हमारे दाम्पत्य-जीवन में कलह का विकास हुआ और मैं अपना सहज-पथ भूलकर क्रोध-वश भटक गया। पहले तो क्रोध-वश किन्तु बाद में सहज इच्छा-वश।

साले साहब प्रियम् से राखी बँधाने यूनिवर्सिटी से आ गये थे। इस समय भाई-बहन रसोई में बैठे बातचीत में मग्न थे। मैं पुस्तकों के अध्ययन में मस्त था। यहाँ यह भी बता दूँ कि मुझे जो हस्त-लिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए थे, वे अभी तक किसी पुस्तकालय में न थे। मैंने इन्हीं के आधार पर पी-एच० डी० की सिनॉप्सिस बनाकर यूनिवर्सिटी भेज दी थी।

मेरी पुस्तक को धीरे से एक महँदी रचे हाथों ने खींच लिया। लालो न जाने कब चुपके आ खड़ी हुई थी। लालो बड़ी प्यारी लग रही थी। वह आज साड़ी ब्लाउज पहने थी। काले फीते से चोटियाँ बँधी थीं। काले स्वच्छ नेत्र खुशी से चमक रहे थे। गालों पर दर्पण जैसी स्वच्छ चमक थी। पूरी देह में क्वाँरी कन्या की पवित्रता-स्वच्छता प्रतिबिम्बित थी।

'भाई साहब, आपने मुझसे राखी न बँधवाई, लेकिन दूसरी लड़की से बँधवा ली।'

'रेवा ने धोखे से बाँध दी।'

'मैं भी पैर छू लूँ?'

'न।'

'रेवा से क्यों छुआये थे?'

'बँगाली लोगों में अपने से बड़े को प्रणाम करने की प्रथा है। अपने यहाँ छोटी लड़कियाँ चाहे बहन, भतीजी और साली कोई क्यों न हो, अपने पति एवं ससुराल के बड़े लोगों को छोड़कर किसी के पैर नहीं छूतीं। बारह बजे के पहले का नाता मानूँ चाहे बाद का, पैर छुआने का अधिकार तो मुझे

नहीं ही है । और हाँ, लालो, आज तो तुम बहुत ही प्यारी-प्यारी लग रही हो । अब धोती ही पहना करो ।'

उसकी कजरारी आँखें झुक गयीं । मैंने मेज पर रखे उसके छोटे हाथ को अपने हाथ में लेकर महँदी देखी, स्नेह से थपथपाया, कहा—'लालो, गुप्ताजी मुझसे एक बात कह रहे थे ।'

'क्या ?'

'कि यूनिवर्सिटी में कोई अच्छा लड़का हो—।'

लालो बिना पूरा वाक्य सुने हाथ छुड़ाकर भीतर भाग गई । मैं चाहता भी यही था, मैं फिर पुस्तक लेकर बैठ गया ।

लालो की मन-मोहिनी मूर्ति किसी के लिए भी स्पृहणीय-हो सकती है । घुटन से भरे वातावरण में लालो का आगमन बसन्त पवन के झोंके-सा लगता । प्रियम् में जो न देख सका, मुझे वह लालो में मिलता । किन्तु मैंने लालो के प्रति कभी भी अपने मन में पाशविक भाव नहीं आने दिये थे । मैं सच ही उसे, मन-ही-मन सगी छोटी साली जैसा मानने लगा था । छोटी साली में एक ओर भगनीत्व होता है तो दूसरी ओर प्रेयसीत्व । लालो के प्रति अपने मनोभावों को इससे अधिक स्पष्ट करना मेरे लिए कठिन है ।

प्रियम् एक बण्डल लेकर आई । 'देखो, भैया कितनी सुन्दर साड़ी लाए हैं ।'

'सुन्दर तो वास्तव में है । तुम्हीं लोग अच्छी हो । धेले की राखी बाँधकर इतनी कीमती चीजें ऐंठ लेती हो । अपने भैया को खिलाया नहीं ?'

'खा चुके । लालो पान लगाकर दे रही है ।'

भाई साहब पान चबाते हुए आ पहुँचे । लालो ने मुस्करा कर पान की तश्तरी मेरी ओर बढ़ा दी ।

मैंने पान चबाते हुए कहा—'प्रियम् ! इसने तो तुमसे भी अच्छा पान लगाया है ।' अपने से छोटों को उत्साहित करने जैसे भाव को लेकर मैंने कहा था । सच तो यह था कि पान का चूना मुँह को जला रहा था ।

प्रियम् की भौहें तन गयीं, लालो के मुँह को ध्यानपूर्वक देखकर वह तुरन्त भीतर चली गई । लाली भी पीछे लग गई ।

साले साहब बोले, 'कोई अच्छी नौकरी तलाश कीजिए।'

'तलाश करने-मात्र से मिल जाय तो क्या कहने ?'

'फिर ऐसे कैसे चलेगा ?'

'कान्यकुब्ज कालेज में स्थान मिलने की आशा है। रिसर्च-स्कॉलरशिप के लिए भी आवेदन-पत्र भेज दिया है। यदि यह मिल जाय तो फिर पी-एच० डी० करूँगा।'

'डॉक्टर हो जाने से तो रहेगा अच्छा। विदेशी यूनिवर्सिटी में भी नियुक्ति हो सकेगी।'

यूनिवर्सिटी के यूनियन के चुनाव की चर्चा चल पड़ी। साले साहब का कहना था कि भारत में अभी प्रजातन्त्र सच्चे अर्थों में नहीं है। यूनिवर्सिटी में प्रतिभाशाली और सच्चे छात्र चुनाव नहीं जीत पाते। जीतते वे हैं जो तिकड़मी हैं।'

हम दोनों के बातचीत के मध्य लालो कमरे के बीच से होती हुई अपने घर चली गई। वह बेहद घबराई हुई थी। ताजा गुलाब-सा मुँह मुरझा गया था।

'''सन्ध्याकाल प्रियम् को फर्श पर लेटा पाया। उसका चेहरा पीला था। दोनों हाथों से पेट ऐंठ रही थी। पास बैठकर पूछा, क्या है ? वह करवट बदलकर लेट गई। मैं भी क्रुद्ध होकर उठ आया।

चूल्हा जलाया। खाना बनाया। बनाकर उठा तो खाने की इच्छा न थी। पैथॉलॉजिस्ट डॉ० सक्सेना से बात कर आया।

रात को झरपट हो गई। वह बिगड़कर बोली, 'मेरे तो भाग्य फूट गए।'

'तुम्हारे नहीं फूटे मेरे फूटे हैं।'

'तुम्हारे तो पौ बारह हैं, तुम्हारी निगाहें कहीं और हैं।'

मैं और भी जलभुन गया। रात को किसी ने भोजन नहीं किया। सब उठाकर महरी को दे दिया। प्रातः मैंने मौन भंग कर बड़ी कठिनाई से उसे स्टूल-टैस्ट के लिए तैयार किया। रुपए के भय से इलाज छोड़ दिया था। उसे फिर चालू किया।

दो पुड़ियाँ अलग-अलग दो गिलास में घोलीं, दोनों को मिलाया, बड़े जोर से झाग निकलने लगा। प्रियम् को पीते ही उल्टी हो गई। वहाँ से रिक्शे द्वारा डॉ० सक्सेना के यहाँ गए। शौच का प्रबन्ध था। डॉक्टर ने स्टूल-टैस्ट की रिपोर्ट लिखकर दे दी। मालूम हुआ कि पेचिश के कीटाणु तो किसी तरह नहीं हैं।

इस रिपोर्ट को लेकर फिर पुराने डॉक्टर के यहाँ गया। उन्होंने बताया कि पेचिश नहीं है किन्तु शिकायत पेट की ही है। उन्होंने अपने यहाँ का एक मिक्श्चर दिया तथा कुछ दवाइयाँ लिखकर दे दीं।

बाजार जाकर दवाइयों का दाम पूछा। ज्ञात हुआ कि जिस टिकिया को दिन में तीन बार खिलाना है उसका दाम है तीन रुपया। कई टिकियाँ और इंजेक्शन आदि पन्द्रह रुपये रोज के पड़ेंगे। डॉक्टर ने तीन दिन बाद रिपोर्ट देने को कहा।

चूल्हा जलाकर खिचड़ी बनाई। जैसे-तैसे ठूंस कर बाजार चला। बड़ी साध से और बड़ी कठिनाई से गुल्लक में पैसे डाल-डालकर दो वर्ष के परिश्रम से मैं मोनियर विलियम का संस्कृत-कोश खरीद पाया था। आज उसे ही बेचने जा रहा था। शायद कोई विवाह की अँगूठी बेचकर इतना दुःखी न हुआ होगा। पचास में बिक गया। दवाइयाँ खरीदकर फिर घर लौटा।

प्रियम् को तीन रुपये वाली टिकिया खिलाई, उल्टी हो गई। झुंझलाहट हुई, यह अच्छा रोग है।

'क्यों व्यर्थ में पैसे बरबाद करते हो ? मेरा रोग डॉक्टरों की दवा से न जाएगा।'

'तो कैसे जाएगा ?'

'मौत के साथ जाएगा। मुझे मेरे घर भेज दो।'

'इस बार भाई आएँ तो कह देना, वे पहुँचा देंगे।'

'मैंने अब समझा कि मैं फूटी आँखों क्यों नहीं सुहाती ?'

'जरा मुझे भी अपनी खोज का पता बता दो।'

'तुम्हारी निगाहें तो कहीं और रही हैं।'

मेरा क्रोध सीमा पार करने लगा, किन्तु मैं बोला कुछ नहीं। यह मूर्ख

अपने फूहड़पन की ओर तो देखती नहीं, उल्टे मेरे ऊपर दोषारोपण करती है। फिर बोली—

'ऐसा ही था तो उससे ही विवाह क्यों नहीं कर लिया था ?'

'किससे ?'

'उसी अपनी चहेती से।'

उसका लक्ष्य किस ओर था ? लता की ओर या लालो की ओर मैं समझ नहीं पाया। विवाह के पूर्व तो मैं इन दोनों को नहीं जानता था। मैंने कितने संयम और धैर्य के साथ इस फूहड़ को स्वीकार किया था। स्वयं भीतर-भीतर रोकर भी मैं कभी इसके प्रति घृणा प्रकट नहीं करता और यह है कि झूठे आरोप लगाकर दिल जला रही है।

'स्पष्ट करो क्या कहना चाहती हो।'

'गाल तुम काटते फिरो, स्पष्ट मैं करूँ ?'

'किसके गाल काटे ?'

'लालो को तुमने नहीं चूमा, उसके गाल पर दाँत का निशान पड़ गया।'

मैंने तीखी निगाह से देखकर कहा—'अच्छा ! तो तुम्हारा रोग यह है ! इसीलिए लालो उस दिन घबड़ा कर भाग गई थी। तुम उससे लड़ी होगी। तभी वह आती नहीं।'

'खूब बुलाओ उसे, छाती से लगाओ। मुझे बहा दो मेरे मायके, न हो, मेरे लिए संखिया ला दो।'

'जिसे संखिया खाना होगा, वह खुद ही प्रबन्ध कर लेगा। किन्तु इसका प्रमाण क्या है कि मैंने ही उसे चूमा है ?'

'उसके गाल पर चिह्न।'

'वह चिह्न तो और भी कोई कर सकता है।'

'तुम कहना चाहते हो कि मेरे भाई ने किया है ?'

'मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि या तो उसके गाल पर निशान था नहीं, यदि था तो मैंने नहीं किया।'

'तो क्या वह झूठ कहती है ?'

'उसने कहा है ?'

'कहा न होता तो मैं क्यों विश्वास कर लेती ! तुमने उससे कहा था कि आज बड़ी प्यारी-प्यारी लग रही हो ?'

'कहा था।'

'उसका हाथ पकड़ा था ?'

'पकड़ा था, किन्तु यह तो मैं तुम्हारे और उसके बाप के सामने भी कर सकता हूँ।'

'बस गाल नहीं काट सकते हमारे सामने !'

'देखो, मैं इतना नीच और झूठा नहीं हूँ। तुमसे साफ कहता हूँ—मैंने उसे नहीं चूमा, नहीं चूमा। या तो तुम्हें भ्रम है, नहीं तो वह पहले से ही किसी से कटा कर आई थी। अथवा जब तुम्हारे भाई को पान दे रही थी—किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता।'

'मेरा भाई कभी ऐसा नहीं कर सकता।'

'मैं कर सकता हूँ ?'

'हाँ, तुम कर सकते हो।'

'ठीक। अभी तक तो नहीं किया किन्तु अब अगर असल बाप का बेटा हुआ, तो जरूर करूँगा।'

उस समय इतना क्रुद्ध था, इतने जोर से दाँत पीस रहा था कि स्मरण कर सिहर उठता हूँ। इतना क्रुद्ध तो जीवन-भर कभी नहीं हुआ। मेरे चरित्र पर इससे बड़ा और वह भी झूठा लांछन किसी ने नहीं लगाया था।

वह सिर पटक-पटक कर रोने लगी। मैं बैठक में चला आया। भोजन बना ही नहीं।

घर या बाहर मैंने किसी भी लड़की से बोलना यहाँ तक कि देखना बन्द कर दिया। मेरा सौभाग्य था कि मुझे यूनिवर्सिटी का रिसर्च स्कॉलर-शिप मिल गया। मैंने अब नौकरी छोड़कर यूनिवर्सिटी जाना शुरू कर दिया। वहाँ प्रातः से सायंकाल तक बैठा रहता। कुछ पढ़ता, कुछ सोचता। घर आता तो बैठक बन्द कर पड़ा रहता। दाढ़ी बढ़ने लगी। कपड़े मैले रहने लगे।

यह कांड मेरी समझ में नहीं आया। मैंने चुम्बन किया नहीं, साले साहब ऐसा अचानक कर नहीं सकते। प्रियम् से लालो ने अवश्य कहा होगा, तभी वह इतनी बिगड़ी। लालो भी ऐसी नहीं कि व्यर्थ में मुझे लांछित कराती। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यदि उसने सचमुच कहा ही है तो मैं देख लूँगा। मैंने दोनों से प्रतिशोध लेने का भयंकर निश्चय कर लिया था।

लालो हमारे घर नहीं आती थी। आती भी होगी तो मेरी अनुपस्थिति में। हम पति-पत्नी आपस में बिल्कुल नहीं बोलते। वह परोस देती, मैं चुपके खा लेता। किसी चीज़ की जरूरत पड़ने पर वह लिखकर मेरे सामने रख देती, मैं मँगा देता।

····मैं शाम को यूनिवर्सिटी से लौटा तो देखा—आँगन में सिघाड़े की बेल, ढाक की टहनी, कुश, बेर और ज्वार के पौधे गड़े हुए हैं। आज हल-षष्ठी का त्योहार होगा। प्रियम् बोली—'वैसे तो मैं तुम्हारे लिए जहर हूँ, क्या करूँ बोलना पड़ता है। आज महरी से पैसे लेकर दही, पसाई के चावल और पूजा की चीजें मँगाई थीं, सो पैसे देना हो तो दे दो।'

'महरी से क्यों पैसे लिए?'

'और क्या करती?'

मैंने अटेची के पॉकेट से रुपए निकालकर फेंक दिए—'ये क्या हैं?'

'ये तो मेरे भाई जमा कर गए हैं।'

'तुम खूब अच्छी तरह जानती थीं कि भाई आज लेने नहीं आ रहे हैं। तुम्हें तो महरी के सामने मेरी फजीहत करानी थी। तुम्हें जो अच्छा लगे करो।'

इस स्त्री को सुहागरात के दिन देखकर ही जान गया था कि इसके साथ मेरी नहीं पटेगी। उस दिन मुझे इतना अधिक दुःख नहीं हुआ था। तब मन में दया आ गयी थी कि इस बिचारी का क्या दोष! इसे मैं क्यों असन्तुष्ट करूँ! मैंने इसके सभी दोष स्वीकार कर लिये; किन्तु इसका व्यवहार तो देखो।

रात को बहुत देर तक कुरसी पर बैठा रहा, नींद नहीं आयी। कहीं

दो-तीन के करीब खाट पर लेटा। न जाने कब आँख लग गयी।

जगा तो सारा शरीर जकड़ा हुआ था। आज जीवन में पहली बार देखा कि मैं खाट पर हूँ और धूप फैल गई है। उठा न गया। आँखों की दोनों कोरें भीगी थीं, सिर में बेहद दर्द था। कराह को पीकर आँखें बन्द कर लीं। माथे पर एक शीतल स्पर्श—'तुम्हें बुखार है, मुझे माफ कर दो।'

टप-टप। मेरे माथे पर बूँदें टपक गयीं। मेरी आँखों से भी जलधार बह निकली। मैंने करवट बदलकर तकिये में अपना मुँह छिपा लिया।

उसने खाट पर बैठकर मेरा सिर अपनी जाँघ पर रख लिया, 'तुमने माफ नहीं किया ?'

वह छाती पर सिर रखकर फफक उठी।

× × एक सप्ताह बाद आज घर में फिर जीवन आया, दौड़-धूप शुरू हुई। मेरे कपड़े बदल दिये गए। कमरा व्यवस्थित कर दिया गया। लालो का भाई डॉक्टर लेकर आया। रुपये शायद प्रियम् ने अपने पास से दिए। लालो भी आयी, सहमी-सहमी खड़ी रही।

प्रियम् ने जल-भरा लोटा मेरे सिर के आस-पास उसारकर (घुमाकर) पानी पी लिया।

मैं बोला—'यह क्या किया ?'

'तुम्हारा बुखार अपने ऊपर ले रही हूँ। लालो, तुम यहीं बैठना। मैं चाय बना लाऊँ।'

मैंने लालो को देखा, वह बहुत उदास थी। मुख पर उत्फुल्लता बिल्कुल नहीं थी। मुझसे आँखें नहीं मिला रही थी। मैंने आँखें बन्द कर लीं।

'भाई साहब, सिर में दर्द है ?'

'हाँ।'

'दवा दूँ ?'

'न।'

प्रियम् ने मेरा बुखार लेने के लिए पानी उसारकर पिया। क्या सच ही वह मेरा बुखार लेना चाहती है ? उसके व्यवहार और हाव-भाव से तो ऐसा ही प्रतीत होता है। पुरुष अपनी पत्नी के प्रति ऐसा क्यों नहीं करता !

पत्नी की एकनिष्ठा का कारण क्या है ?

पत्नी के बीमार होने पर विशेष क्षति नहीं होती, पुरुष बीमार हो जाय तो घर में पैसा आना बन्द हो जायगा। शायद इसीलिए पत्नी हर सम्भव उपाय से पति को स्वस्थ रखना चाहती है। एक स्त्री के मरने पर पुरुष दूसरी स्त्री ले आयगा, किन्तु स्त्री एक बार विधवा होकर जीवन-भर विधवा रह जायगी। इसीलिए एकनिष्ठा स्त्री में होती है, पुरुष में नहीं।

तो स्त्री की एकनिष्ठा का कारण आर्थिक है।

सेनगुप्ता के विचार कुछ ऐसे ही थे। वह भी कहता था पतिव्रत जैसी कोई चीज़ नहीं, यह परिस्थिति पर निर्भर करती है। कोई स्त्री स्वभाव से पतिव्रता नहीं होती। अन्य मार्ग बन्द होने से ही उसे पतिव्रता बनना पड़ता है।

मुझे याद है मैंने उससे पूछा था कि सीता के बारे में क्या कहा जा सकता है ? उसे तो दूसरा मार्ग मिल गया था। रावण, रूप, बल, पराक्रम आदि में राम से कम न था। बल्कि वैभव की दृष्टि से वनवासी राम से वह ही अधिक सम्पन्न था। फिर भी सीता अपने उसी निर्वासित राम की रट लगाये रही।

सेनगुप्ता कुछ-न-कुछ बोला अवश्य था, किन्तु सीता के पातिव्रत के विरोध में वह कोई तर्क नहीं दे सका था।

मेरी स्त्री में पातिव्रत का कारण चाहे आर्थिक हो अथवा और कुछ (कारण तो प्रत्येक कार्य का होता है।) किन्तु वह था अवश्य। मानो सृष्टि के संहार के लिए सन्नद्ध क्रुद्ध शंकर की भृकुटि पार्वती की भी करुणदृष्टि को देखकर सरल बन गयी हो।

यह स्त्री क्या मेरा क्रोध जीत लेगी ?

ग्यारह

बहुत दिन बाद विश्वविद्यालय गया। गोमती के पुल पर पातीराम साहब मिल गये। नीचे घाट पर नहाती हुई महिलाओं का निरीक्षण कर रहे थे।

'पातीराम, तुम आये नहीं?'

'पंडितजी, चुनाव में व्यस्त हो गया था।'

'चुनावों में बड़ी रुचि ले रहे हो।'

'आजकल सफलता की कुंजी तो बस पालिटिक्स में है। इसी के बल पर गधा-दिमाग भी मिनिस्टर हो जाते हैं। फिर मिनिस्टर हो गए तो क्या कहना। कभी चप्पल की दूकान का उद्घाटन तो कभी किसी भड़भूंजे के भाड़ का। क्या बहार रहती है, कार के आगे-आगे मोटर साइकिल पर पुलिस-अधिकारी, पीछे-पीछे पुलिस की गाड़ियाँ। कैसी धूम! जाते ही बैंड से स्वागत, फूलमाला, फोटो, अभिनन्दन-पत्र और प्रीतिभोज।'

'बात तो तुम ठीक कहते हो।'

'देखना पंडितजी, चुनाव जीतने की ट्रेनिंग ले रहा हूँ। एक बार मिनिस्टर की कुरसी पर बैठकर न दिखा दूं तो पातीराम नाम नहीं।'

'तुम लोग सब कुछ कर सकते हो।'

'एक मुहल्ले के सभी अछूतों का नेता तो मैं अभी बन गया हूँ।'

'पातीराम! एक बात है।'

'क्या?'

'मेरे घर पर मौजी नामक जमादार आता है। उसकी लड़की सोना आठवें में पढ़ रही है। कहता था कि कोई लड़का हो तो···

'पंडितजी, मैं पाखाना साफ करने वाले की लड़की से कैसे···'

कहते-कहते वह रुक गया। मैं हँस पड़ा—'फिर?'

'मैं तो लव-मैरिज (प्रेम-विवाह) करूँगा।'

'घर वाले तैयार होंगे?'

'उनकी परवाह ही कौन करता है!'

'मैंने सुना है तुम घर भी बहुत कम जाते हो। जाते भी हो तो अपने माता-पिता से भी घृणा करते हो।'

'वे रहते ही गन्दे हैं।'

'गन्दे हैं तो क्या, हैं तो पिता-माता। इन लोगों को भी सफाई से रहना सिखाओ।'

'सुधारक बनने के लिए मेरी जवानी नहीं है।'

'फिर अछूतों के नेता क्यों बनते हो?'

'नेता बनता हूँ उनकी आवाज़ विधान-सभा में पहुँचाने के लिए।'

'वोट लेने के लिए नेता बनते हो और उनसे मन-ही-मन उनकी गन्दगी के लिए घृणा करते हो। तुम पढ़े-लिखे अछूत, कुरील, दोहरे, रजक, धानविक, वाल्मीकि आदि बन जाओगे और चमार, धोबी, धानुक, भंगी आदि अछूत ही बने रह जायँगे।'

'पंडितजी, आज के जमाने में सभी जगह ऐसा ही हो रहा है। मैंने यहाँ के एक ब्राह्मण नेता को देखा कि घर पर वे कट्टर ब्राह्मण हैं, परन्तु एक दिन लाल टोपी लगाये और लाल झंडा लिए अछूतों को मन्दिर में घुसाने का आन्दोलन कर रहे थे। यह सब क्या वोट पाने के लिए नहीं है? मुझे मालूम है कि कानपुर के एक ऊँची जाति के नेता किताब-काण्ड के सम्बन्ध में मुसलमानों के साथ काला झंडा लिए घूम रहे थे। वे लखनऊ भी आये थे उर्दू की माँग लेकर। यह सब क्या है? क्या वोट लेने के लिए यह बहुरूपियापन नहीं है? पंडितजी, उल्टी गंगा बह रही है। साधु बनने से काम न चलेगा। आप ब्राह्मण हैं, साधु बने रहिए। मैं भी आपके पैर छू लूँगा, लेकिन करूँगा वही, जिससे चार पैसे मिलें। अच्छा प्रणाम।'

वह चला गया। कुछ रुष्ट हो गया था। मैंने उसकी बातों पर विचार किया। उसका क्या दोष? देश के नेता जैसा वातावरण तैयार कर रहे हैं, शिक्षा-संस्थाओं में जैसी शिक्षा दिला रहे हैं, उसी की उपज तो है यह पातीराम भी।

× × यूनिवर्सिटी के पते से १५०) का मनीआर्डर और एक पत्र आया था। मैं निबन्ध-प्रतियोगिता में विजयी हुआ था, उसी का पुरस्कार था।

पत्र मेरे मित्र रामेश्वरदयाल शर्मा—रामू का था। लिखा था—इस समय इटावा के एक इण्टर कॉलेज में अध्यापक हूँ। इस वर्ष अर्थशास्त्र लेकर एम० ए० फाइनल की परीक्षा आगरा विश्वविद्यालय से दे रहा हूँ। आठवें पेपर में थीसिस ली है। तुम्हारे घर पर ठहरकर कुछ दिन लखनऊ यूनिवर्सिटी से सामग्री संकलित करूँगा। आशा है इतनी सुविधा अवश्य दोगे।'

यह अच्छी बला लगी। यह दुष्ट मेरा सहपाठी रहा है। इसने मेरे साथ जो दुष्टताएँ की हैं प्रियम् को बता चुका हूँ। वह इसे घर पर रखने के लिए शायद तैयार न होगी। किन्तु मैं नाहीं कैसे करूँगा ? कुछ दिन की बात है, पड़ा रहेगा, हमारा क्या बिगड़ेगा !

रुपये अच्छे आ गये। प्रियम् का इलाज हो जाएगा।

आज पढ़ाई में मन न लगा। पुस्तक, नोटबुक और पेंसिल लिए ऐसे ही बैठा रहा। एक बार पढ़ता, कुछ समझ में न आता, दुबारा फिर उसे पढ़ता। पढ़ते-पढ़ते ही कल्पनाएँ करने लगता। नोटबुक कोरी बनी रही।

मेरे मन में बार-बार प्रश्न उठता, लालो झूठी या प्रियम् ? कैसे मालूम हो ?

घर आकर प्रियम् से पूछा भी—'मैंने तुमसे कहा था कि लालो से पूछकर पता लगाओ उसे किसने चूमा था ?'

'पूछा तो था, वह क्या कुछ बताती है !' प्रियम् के स्वर में शिथिलता थी। अवश्य ही कहीं कुछ दोष रह गया है। वह आँखें नीची किए कुछ मुस्कराती बोली,

'वह तो पागल है। कल मैंने जब पूछा कि सच बताओ तुम्हें किसने चूमा था, तो झट चुन्नी से अपने गाल पोंछकर बोली, क्या अभी भी निशान बना है ? उस मूरख को यह नहीं पता कि पन्द्रह दिन तक क्या निशान ही बना रहता है।'

लालो के भोलेपन पर मुझे मन-ही-मन हँसी आ गई।

किन्तु इन दोनों के विषय में मैंने जो निश्चय कर लिया था, उस पर अडिग रहा।

× × मैंने रामू की चिट्ठी के विषय में प्रियम् से कहा, वह बहुत

बिगड़ी, 'ऐसे आदमी को थोप-थोपकर मैं नहीं खिला सकती।' बहुत समझाने पर वह तैयार हुई, किन्तु थी बहुत क्षुब्ध।

मैंने संगीत की प्रगति के विषय में पूछा तो चुप रही।

'तुमको घर पर अभ्यास करना चाहिए। चार औरतों के बीच में दो-एक अच्छे गीत गा लोगी तो मुझे भी प्रसन्नता होगी। मेरी भी तबियत बहल जायगी। गायन-विद्या कितनी अच्छी कला है! मुझे वे लड़कियाँ बहुत बहुत प्रिय हैं, जो संगीत-कला जानती हैं।'

शायद मुझे खुश करने के लिए ही दस-पन्द्रह मिनट तक हारमोनियम पर सरगम का आभ्यास किया। बाजा जोर से धोंक रही थी और गा रही थी धीरे-धीरे चीं-चीं के स्वर में। इसके बाद फिर किसी दिन मैंने उसे अभ्यास करते हुए नहीं देखा।

बारह

रामू आकर डट गया। उसके लिए मैंने बैठक छोड़ दी। मकान में केवल दो कमरे थे। भीतर वाले कमरे में सामान भरा रहता था। बरामदे में ही कुर्सी और मेज लगाकर मैं पढ़ने लगा। बैठक वाला कमरा सिगरेट के धुएँ से भरा रहता। चारों ओर जली-अधजली, सुलगती सिगरेटों के टुकड़े पड़े रहते। एक कोने में मैनपुरी तम्बाकू थूकी जाती। प्रियम् कमरा साफ करते-करते झुँझला पड़ती। यह नया जन्तु मेरे साथ प्रातः निकल पड़ता तो संध्या को ही लौटता था। मैं दोपहर को ही लौट आता था। रामू संध्याकाल घर पर भोजन करता, दोपहर को किसी होटल में खा लेता।

मैंने बरामदे में आसन जमाते हुए कहा—'प्रियम्, तुम संगीत का अभ्यास नहीं करतीं? तुम अनुमान नहीं लगा सकतीं, तुम्हें गाता हुआ देख कर मेरे दिल को कितनी खुशी होगी। तुम्हें मेरे खुश रहने की बिल्कुल परवाह नहीं है।'

'ऐसा है तो घर पर मास्टर लगवा दो।'

सोचा डेढ़ सौ हाथ आ गए हैं। सब थोड़े ही दवा पर खर्च होंगे। दो मास तक इसका ट्यूशन लगवा दें। दो-चार गाने सीख जायगी। बीस रुपये मासिक पर एक मास्टरनी आकर सिखाने लगी।

एक दिन यूनिवर्सिटी से कुछ जल्दी लौट आया था। घर में घुसते ही गाने का मधुर स्वर सुन पड़ा। प्रियम् गा रही थी—

झुक गई कदम की डारी।
झूला धीरे झुलाओ बनवारी॥

कितना मीठा स्वर था! गाने में अभी शुद्धि नहीं थी। हारमोनियम के स्वर के साथ उसका स्वर नहीं मिल रहा था। ताल की भूल भी हो रही थी; किन्तु स्वर की मिठास आकर्षक थी। मास्टरनी उपस्थित थी। मैं बैठक में ही रह गया।

प्रियम् गाना बन्द कर मेरे पास आ गई।

'जाओ, अभ्यास करो न।'

'तुम्हें प्यास तो नहीं लगी?'

'न न, तुम जाओ अभ्यास करो। संगीत साधना से आता है। मेरी चिन्ता न करो।'

...रात को प्रियम् ने मेरे सामने दो रेशमी चोटियाँ और दो सुन्दर फूलदान ला रखे।

मैंने कहा, 'जान पड़ता है रामू बाबू खाने और रहने का बिल चुकाने लगे हैं।'

'मैं नहीं लूँगी।'

'इन्हें ले लो। आगे के लिए रोक देंगे।'

बैठक में आकर रामू से कहा, 'भाई! देखो, मैं गरीब अवश्य हूँ किन्तु अपने मित्र को आठ-दस दिन खिला देने की सामर्थ्य रखता हूँ। तुम इस रूप में दाम चुकाने की हरकतें न करो।'

इस रात पढ़ाई न जम सकी। हम तीनों बहुत रात तक गप्पें लड़ाते रहे। रामू गप्प लड़ाने में एक नम्बर का उस्ताद है। उसके अनुभव सुनकर

प्रियम् खिलखिला पड़ती। मैं तो ये अनुभव पहले ही सुन चुका था।

नौ बजे रात के समय अकस्मात् ज्ञान को देखकर आश्चर्य हुआ। सिर में घावों के ऐसे निशान थे, जो आधे पुर गए थे। एक बाँह गले से बँधी हुई थी।

'क्यों रंजन, चकित रह गए, यह सेकुलरवाद का प्रसाद है ?'

'सेकुलरवाद ?'

'हाँ, एक गहरी उलझन में फँस गया हूँ। बैठो पूरा हाल सुनाऊँगा।'

रामू सिगरेट के कश लगाकर चुपचाप एकटक देख रहा था। वह अन्तिम कश लगाने के बाद सिगरेट पैर से कुचलकर बोला—

'महाशयजी, आपकी इस स्थिति से मुझे पूर्ण सहानुभूति है, किन्तु आप सेकुलरवाद से क्यों नाहक चिढ़े हैं ?'

'मित्र, आप जानते हैं सेकुलरवाद है क्या ?'

'क्यों नहीं ? जिस देश में अनेक मतावलम्बी रहते हों, वहाँ धर्म-निरपेक्षता की नीति अपनानी ही पड़ती है।'

'धर्म-निरपेक्षता है क्या मित्र ?'

'किसी के धर्म में हस्तक्षेप न करना।'

'फिर हिन्दू कोड-बिल क्यों बना ? मन्दिरों की सम्पत्ति में क्यों हस्तक्षेप किया जाता है ?'

'भ्रष्टाचार दूर करने······।'

'ठहरिये, क्या भ्रष्टाचार हिन्दू धर्म और संस्थाओं में ही है ? अच्छा है यह सेकुलरवाद। केरल में साबरी माला का मन्दिर ईसाइयों ने भ्रष्ट किया, हिन्दुओं ने सरकार से शिकायत की। सरकार बोली कि सेकुलरवादी राज्य में हम कुछ नहीं कर सकते। हिन्दुओं ने भी कुछ करना चाहा तो लाल पगड़ी और बन्दूकें पहुँच जाती हैं और कुछ नहीं करने देतीं, क्योंकि सेकुलरवाद है। सेकुलरवाद का अर्थ है हिन्दू-विरोध।'

'सरकार हिन्दू-विरोध क्यों करेगी ? असल में बात यह है कि अल्पसंख्यक लोगों को आश्वासन देने के लिए उनका ध्यान रखना पड़ता है। हिन्दुओं की तो सरकार ही है।'

'हाँ, ऐसे हिन्दुओं की सरकार है, जो एक्सीडेंट से हिन्दू हो गए हैं, वास्तव में मन से नहीं हैं। और ऐसे हिन्दू जिनमें कि भारत के सर्वोच्च नेता भी शामिल हैं, जब कभी हिन्दू मन्दिरों में जाते हैं, तो वहाँ के नियम के अनुसार धोती पहनने से इन्कार कर देते हैं, बड़बड़ाते और हाथ फेंकते लौट आते हैं। किन्तु वही लोग निजामुद्दीन की मजार पर मुसलमानी ड्रेस में मुस्कराते हुए फूल चढ़ाने जाते हैं। सच तो यह है कि अल्प-संख्यकों का हित सोचकर यह सब कुछ नहीं किया जाता, किया जाता है वोटों के लिए। हिंदू साले हैं मूर्ख, पचास पार्टियों में बँटे हैं और अल्प मत कहे जाने वाले हैं संगठित। सो वोटों की हड्डी चूसने के लिए सरकार तथा सभी राजनीतिक दल दुम हिलाते घूम रहे हैं।'

मैंने इस बहस की दिशा मोड़नी चाही। मैं शीघ्र सोने का आदी हूँ। नहीं चाहता कि ये लोग बहस के नशे में आधी रात तक गुल-गपाड़ा मचाते रहें। मैंने कहा, 'बड़े गरम जान पड़ रहे हो। क्या तुम्हारी चोटों से भी सेकुलरवाद का कुछ सम्बन्ध है?'

'मेरी चोटों से ही नहीं, देश की चोटों से इसका सम्बन्ध है।'

'ज्ञानजी, आप बीती सुनना चाहता हूँ।'

'मेरी आप बीती ही भारत बीती का भयावह रूप प्रस्तुत करती है। आज के शासकों और दलों की नीति में कितना खोखलापन है, यह भी इससे प्रकट हो जाता है।'

प्रियम् ने तीन प्याला चाय लाकर हमारे सामने रख दी। मैंने सबका परस्पर परिचय कराने के उपरान्त ज्ञान से आग्रह किया कि वह अपनी कहानी शीघ्र सुनाए। वह कुर्सी पर पल्थी मारकर बैठ गया। चाय की चुस्की लेते हुए बोलने लगा—

"मैं अपने गाँव गया हुआ था। मैंने सुना मुसलमान कसाइयों ने मेरे गाँव की एक विधवा की गाभिन गाय का वध कर दिया है। मैंने दूसरे दिन कसाइयों को कई दूध देने वाली गायों के साथ बूचड़खाने की ओर जाते हुए देखा। मैं रास्ता रोककर खड़ा हो गया कि इन दूध देने वाली गायों को मत काटो। बस, मेरा कहना था कि पता नहीं मेरे ऊपर कितनी

लाठियाँ पड़ीं। होश में आया, तो अस्पताल में था। बाद में ज्ञात करना चाहा कि क्या मेरे प्रहार-कर्त्ता दंडित हुए हैं कि नहीं तो पता चला कि पुलिस ने चालीस-पचास लोगों को गिरफ्तार किया है किन्तु उनमें मुसलमान एक नहीं है। लोग दारोगा के पास पहुँचे तो उसने कहा, 'मुसलमानों ने ही पहले रिपोर्ट की कि गाँव के लोग लाठी लेकर चढ़ आए और उनकी गायें लूटनी चाहीं। उन्होंने रक्षा-मन्त्री, गृह-मन्त्री और नेहरूजी को ही नहीं, देश के बाहर मुसलमानों के देशों को भी तार दे दिए हैं कि हमारे ऊपर बड़ा अत्याचार हो रहा है। ऐसी हालत में यदि हम पुलिस के लोग हिन्दुओं को छोड़ दें और मुसलमानों को गिरफ्तार करें तो हमारी दारोगागीरी गई। दारोगा का यह हाल, अब सुनो कांग्रेसी एम० एल० ए० का हाल। वे भी दौरा पर पहुँचे और बोले कि मुसलमान निर्दोष हैं, हम उनकी रक्षा करेंगे। कम्यूनिस्ट लोग कब चूकने वाले थे, उन्होंने प्रचार कर दिया कि जो लोग पकड़े गए हैं वे संघी हैं। स्थिति यह है कि जो पकड़े गए हैं वे संघ को जानते भी नहीं हैं। उन्हें घटना का भी पता नहीं। पुलिस ने अपनी स्थिति को बचाने के लिए उन्हें घरों से पकड़ा था। लाल टोपी वाले एक वकील साहब भी दौरा कर आए। रंजन, तुम उन्हें जानते हो। ये वकील साहब तुम्हारे गाँव के हैं। उन्होंने मुसलमानों को आश्वासन दिया है कि बिना फीस लिए मुकद्दमा लड़ेंगे। जानते हो, वकील साहब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव उसी क्षेत्र से लड़ना चाहते हैं? नेताओं को अपनी पड़ी है। ये दुष्ट यह नहीं जानते कि कैसा जहरीला पेड़ ये बोने जा रहे हैं।'

रामू हँसकर बोला—'किन्तु आपको क्या झक सवार हुई कि कसाइयों से उलझे?'

'ऐसा कहकर इन स्वार्थी नेताओं की गद्दारी को ढका नहीं जा सकता। जब तुम हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं मानते तो सच्चा सेकुलरवाद तो तब है, जब तुम अपराध करने वाले को अवश्य ही दंडित करो, वह हिन्दू हो अथवा अहिन्दू।'

मैंने कहा—'बात तो कुछ ठीक है। अभी हमारे देश के नेता सच ही या तो गाफिल हैं अथवा स्वार्थी हैं। अभी भी ऊँचे स्थानों में मुसलमान

भरे हुए हैं और प्रायः ऐसा सुनाई पड़ता रहता है कि अब यह अफसर पाकिस्तान भाग गया और अब यह व्यापारी। भारत के पैसे से अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में एंजीनियरिंग आदि की शिक्षा पाकर मुस्लिम युवक भाग जाते हैं पाकिस्तान। देश पर कभी संकट आया तो नब्बे प्रतिशत मुसलमान गद्दारी कर जाएँगे।'

ज्ञान फिर ताव के साथ बोला—'हमारे मूर्ख नेताओं की तो आँखें फूटी हैं। यह न सोचा कि 'कुत्ता' वाली और 'किताब' वाली घटना होने पर सारे भारत में मुसलमानों ने एक साथ प्रदर्शन कैसे किए? भीतर ही भीतर षड्यंत्र चल रहा है। इनकी आँखें नहीं खुलतीं। मुसलमान खाता है भारत का और सपना देखता है पाकिस्तान का।'

रामू ने कहा—'मुसलमान निरुपाय हैं। उनका कहना है कि पहले उन्हें अगर चालीस प्रतिशत नौकरियाँ मिल जाती थीं तो अब पाँच प्रतिशत भी नहीं मिलतीं।'

'रामू बाबू, पाकिस्तान के लिए कितने प्रतिशत मुसलमान तैयार थे? क्या सौ में लगभग सौ प्रतिशत तैयार नहीं थे? तो वे नौकरी करने वहीं क्यों नहीं जाते? दूसरी बात, उनकी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान में है, यहाँ उनकी संख्या कम हुई इसलिए नौकरियाँ भी कम मिलती हैं; तीसरी बात कि यदि तुम्हें नौकरियाँ दे भी दी जायें तो तुम गद्दारी करते हो। पता नहीं कब छोड़-छाड़ कर पाकिस्तान चल दो। पाकिस्तान में हिन्दुओं को कितनी नौकरियाँ मिली हैं? वहाँ तो तुम हिन्दुओं को जीने भी नहीं देते हो?'

'फिर भी हिन्दुओं को चाहिए कि उन्हें अपनाएँ। उन्हें विश्वास दिलाएँ।'

'हिन्दुओं को नहीं मुसलमानों को समझाने की आवश्यकता है। इस्लाम के अनुसार अल्लाह, कुरान और मुहम्मद के अतिरिक्त और कुछ सत्य नहीं है। गैर-मुस्लिम को मारने से गाजी की उपाधि और बहिश्त मिलता है। दूसरों की स्त्री और धन छीनना भी गुनाह नहीं है। बताओ इसमें मानवता कहाँ है! पहले इन रेगिस्तान दर्शनियों को मानवता का पाठ पढ़ाइए।

हिन्दुओं को शिक्षा देने का फैशन छोड़ दीजिए।'

'इस प्रकार तो यह घृणा-भाव सदैव बना रहेगा।'—रामू ने कहा।

'जिस देश में आप जैसे प्रगतिवादी होंगे, नपुंसक सेकुलर-नीति होगी, वोटों की हड्डी पर मर कटने वाले लोलुप नेता होंगे, वहाँ इस प्रकार की समस्या हमेशा रहेगी।'

'अच्छा ज्ञान बाबू, आपने कहानी पूरी नहीं की।'—मैं बोला।

'कहानी में और क्या है। जमानत पर छूट आया हूँ। मुकद्दमा चल रहा है। पुलिस केस बना है। मुसलमानों की ओर से पुलिस लड़ रही है।'

···मुकद्दमा लड़ने के लिए ज्ञान चन्दा लेने आया था। मैंने पाँच का एक नोट दिया। रामू ने भी पाँच रुपये दिये।

तेरह

सरकार की ओर से युवकों के चरित्र-निर्माण के सम्बन्ध में एक कैम्प का आयोजन हुआ। यूनीवर्सिटी और कालेज के प्रोफेसर और रिसर्च-स्कॉलर बुलाए गए थे। कैम्प इलाहाबाद में हुआ। मैं भी भाग लेने के लिए चला।

चलते समय प्रियम् ऐसी रोई। ऐसी रोई मानो मैं एक लम्बे अरसे के लिए जा रहा हूँ। उसे बहुत समझाया कि केवल तीन दिन का कैम्प है। उसके भाई को यूनिवर्सिटी से बुला दिया। वह घर पर रहेगा।

द्वार से बाहर निकलते समय तो उसने ऐसी करुणा दृष्टि से देखा कि बिहारी के इस दोहे को चरितार्थ करने की इच्छा हो आयी—

बिलखी डभकौहैं चखनु, तिय लखि गवनु बराय।
पिय गहबरि आएँ गरैं, राखी गरैं लगाय।

×× कैम्प के लिए हजारों रुपये दिये गए थे। भाग लेने वाले कुल चालीस लोग थे। इलाहाबाद के एक श्रेष्ठ होटल में ठहरने का प्रबन्ध था।

मेरे साथ एक ही रूम में लखनऊ के एक कालेज के प्रोफेसर विनोद शर्मा ठहरे हुए थे। शर्माजी मेरे समवयस्क थे।

सन्ध्याकाल कई समस्याओं पर विचार हुआ। प्रोफेसर शर्मा ने देश-विदेश का उदाहरण देते हुए बहुत ही उत्तम सुझाव दिए। मैं उनकी तर्क बुद्धि पर चकित था। स्वयं ब्राह्मण होते हुए उन्होंने जाति-प्रथा का कट्टर विरोध किया।

शर्माजी अपने साथ कम-से-कम १५ टाइयाँ लाए थे। दिन में जितनी बार बाहर निकलते, टाई बदल कर। केवल कमीज पर टाई लहराती हुई कभी-कभी दोनों कन्धों के पार फड़फड़ाने लगती।

रात को बड़ी गरमी रही। बादल छाए थे, किन्तु पानी नहीं बरस रहा था। प्रात: जरा आँख लगी थी। शर्माजी ने अकस्मात् जगा दिया—'शुक्ला जी, जरा बटन दबाइए। बैरा अभी तक नहीं आया।'

बटन दबाने के कुछ मिनट पश्चात् बैरा दो प्याला चाय लेकर उपस्थित हुआ।

'लीजिए शुक्लाजी, आप भी चाय पीजिये।'

'अभी चाय कैसे पीऊँ? न शौच गया, न मुँह धोया।'

शर्माजी हँसते हुए बोले, मानों मुझे समझा रहे हों—'साहब, यह तो 'बैड टी' है।'

'लेकिन मैं योरुप में नहीं हूँ, एक गरम देश में हूँ।'

'होटल के नियम के अनुसार न चलने पर गँवार समझे जाएँगे।'

'मैं गँवार कहलाना पसन्द करता हूँ किन्तु मूर्खतापूर्ण पद्धति का अनुसरण नहीं करूँगा।'

'आप रूढ़िवादी प्रतीत होते हैं शुक्लजी, जमाना बदल रहा है।'

'शर्माजी, यदि मैं रूढ़िवादी हूँ, तो आप भी रूढ़िवादी हैं। अन्तर यह है कि मैं अपने देश की रूढ़ियों का पालन करता हूँ जो कि हमारे देश के अनुकूल हैं और आप विदेश की रूढ़ियों का पालन करते हैं जो कि जलवायु के अनुकूल न होने से हानिकर हैं। शौच गए नहीं, मुँह का कफ आदि साफ नहीं किया। कैसे चाय पी लूँ? मैं अच्छी तरह जानता हूँ आप घर पर

बिछौने की चाय न लेते होंगे।'

'यह आपने कैसे जाना कि घर पर बिछौने की चाय नहीं लेता। मैं विलायत घूमने का पक्का इरादा रखता हूँ। इसलिए वहाँ की पद्धतियों का अभी से अनुसरण करने लग गया हूँ।'

'किस सिलसिले में विलायत जाना चाहते हैं ?'

'जो भी सिलसिला मिल जाय। अमेरिका जाने की बड़ी इच्छा है। सुना है बड़ी ऊँची इमारतें हैं। सड़कें कारों से भरी रहती हैं। मेरे एक मित्र बता रहे थे कि आप जिस मोटर को देखें प्रायः गोरी मुलायम कलाइयाँ चलाती दिखाई पड़ेंगी। अर्थात् स्त्रियाँ...।'

'अर्थात् आपको गोरी मुलायम बाँहें अधिक आकृष्ट कर रही हैं।'

'साहब, सेक्स-अपील को संतुष्ट करना एक आवश्यक कर्तव्य है। हमारे दकियानूस देश में इतने बन्धन हैं कि हम सब-के-सब कुंठाओं के दास हो जाते हैं। इसीलिए हमारे यहाँ यौन-विकृतियाँ अधिक हैं।'

'और शायद विदेशों में कम हैं ?'

'नहीं, वहाँ भी हो सकती हैं, फिर भी—।'

'खैर कुछ भी हो, वहाँ आप सेक्स की हरी-हरी घास खुले रूप से चर सकेंगे। वहाँ के लोग उत्सुकता के साथ आपसे मिलने आएँगे कि आप एक ऐसे देश से आ रहे हैं जहाँ के लोग आध्यात्मिक-शांति का अनुभव करते हैं। और आप उनकी धारणा के विरुद्ध किशोरियों के पीछे लार टपकाते और हिनहिनाते घूमेंगे। देश की संस्कृति का क्या भव्य उदाहरण पेश करेंगे !'

'देश और संस्कृति गए चूल्हे में। शुक्लाजी, मैं भविष्य-वाणी कर रहा हूँ कि आप जीवन-भर सफल न होंगे। संस्कृति और देश की बातें मंच पर खड़े होकर भले करिए। उन्नति करना चाहते हैं तो बुद्धि से काम लीजिए'

मैं केवल मुस्कराकर रह गया। शर्माजी चाय पीकर तौलिया लेकर उठ गए।

...सभी कैम्पर्स ने एक झूठा बिल बनाकर पास करा लिया और उससे प्राप्त पैसों से सिनेमा देखने का निश्चय हुआ। मैंने देखने से इन्कार कर

दिया।

दोपहर के बाद नाश्ते के समय डाइनिंग रूम में एक गुजराती परिवार ने प्रवेश किया। महिला संभ्रान्त एवं धनिक परिवार की प्रतीत हुई। लड़की चुस्त फ्राक पहने थी, कमर में काली पेटी बँधी थी। उससे कड़े स्तन चुस्त पोशाक के कारण उभरे हुए थे। अवश्य ही किसी कान्वेण्ट में पढ़ती होगी। चरित्र-सुधार कैम्प में आए हुए विद्वान् लोगों की निगाहें अपना-अपना चरित्र सुधारने के लिए इस किशोरी के स्तनों से टकराने लगीं।

सायंकाल होटल के सामने के अशोक-वृक्ष के नीचे कुर्सियाँ डलवाकर मैं बैठ गया। यार लोग सिनेमा देखने के लिए कमरों में साज-शृंगार कर रहे थे। पाउडर, क्रीम, टाई आदि से सज्जित होकर लोग मेरे पास आये। उसी समय वह लड़की होटल के सामने वाले फव्वारे के पास आकर बैठ गई। यार लोग फव्वारे के पास चक्कर लगाने लगे। लड़की किसी की ओर नहीं देख रही थी। उसने अलसाते हुए बाँहें फैलाकर जमुहाई ली। शर्मा आकर बोला, 'शुक्ला यार, तुम्हें देखकर जमुहा रही है। अब तो मैं भी सिनेमा देखने न जाऊंगा। तुम्हारी तरह मेरा भी सिद्धान्त है कि बिना यह जाने कि पिक्चर कैसी है देखनी नहीं चाहिए।'

'शर्माजी, मैं ओस चाट कर प्यास नहीं बुझाता। जब प्यास अनुभव होगी तो छककर पिऊंगा।'---कहकर मैं उठ आया और सड़क पर घूमने चला गया।

हजारों रुपयों का श्राद्ध हो गया, खूब तू-तू मैं-मैं रही। युवकों के चरित्र सुधार के लिए क्या सीखा, पता नहीं; किन्तु बहुतेरे कमा कर लौटे। झूठे बिल बनाना सीख आए। ऐसे कार्यक्रमों में कैसे तिकड़म भिड़ाकर फिर आ सकें, इसके हथकण्डे सीख आए।

मैंने प्रतिज्ञा कर ली, अब ऐसे कार्यक्रमों में जाकर समय नष्ट न करूंगा।

चौदह

घर लौट आने पर ज्ञात हुआ रामू इटावा लौट गया है। वह दस-पन्द्रह दिन में फिर आयगा।

प्रियम् मेरे लिए सुस्वादु भोजन बनाने में दत्तचित्त हो गयी। मैं स्नानादि से निवृत्त होकर पढ़ने बैठ गया। लालो पुस्तक लेकर आयी—'जरा संस्कृत बता देंगे ?'

'बहनजी से पूछ आयी हो ?'

उसका मुँह लाल हो गया, सिर झुकाकर बोली, 'हाँ।'

मेरे मन में फिर प्रश्न उठा—चुम्बन किसने लिया था ?

पढ़ाते-पढ़ाते मैंने एक कागज़ उठाकर उस पर पेंसिल से लिखा—'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।' वह काँप गयी। प्रश्न पूछते समय उसकी जीभ लड़खड़ाने लगी। मैं समझ रहा था प्रियम् के आतंक से वह इस समय भी ग्रस्त थी। मैंने अधिक डोज़ देना ठीक न समझा।

उसने भी अधिक प्रश्न नहीं पूछे। अपनी पुस्तक लेकर सकपकायी-सी खड़ी रही; *मानो हृदय की तेज़ धड़कन कम होने की प्रतीक्षा कर रही हो।* कुछ मिनट पश्चात् वह धीरे-धीरे चौके की ओर चली गयी।

मैंने अपने मन को संयत कर पढ़ने में लगा दिया। बहुत दिन पश्चात् पढ़ने बैठा था। सभी सूत्र छिन्न-विच्छिन्न थे। बड़ी कठिनाई से पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित कर एक-डेढ़ घंटे तक पढ़ता रहा।

× × ज्ञान ने एक विश्वसनीय डॉक्टर के लिए पत्र लिख दिया था। प्रियम् को लेकर उन्हीं के यहाँ जा पहुँचा। किस डॉक्टर ने क्या बताया था, उन्हें सब सुना दिया। सभी डॉक्टरों की रिपोर्टें दे दीं। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक पढ़ने के बाद प्रियम् की जाँच के लिए कहा। भीतरी रूम में जाकर वह बेंच पर लेट गयी; किन्तु उसने बेंच पर रखा हुआ तकिया उठाकर अलग फेंक दिया। डॉक्टर साहब मुस्कराने लगे।

'डॉक्टर साहब, ये किसी से प्रयुक्त कपड़ों को नहीं छूती हैं।'

परीक्षा के बाद डॉक्टर ने कहा—'इन्हें न लिकोरिया है और न पेट

की खराबी। ये सारी खराबियाँ लिवर की खराबी का फल हैं। मैं उसी का इलाज करूँगा। मेरी दवाइयाँ कीमती होती हैं।'

'डॉक्टर साहब, एक लेडी डॉक्टर ने कहा था कि एक हल्का-सा ऑप-रेशन कराना होगा, नहीं तो बच्चे नहीं हो सकेंगे।'

'न, उसकी आवश्यकता न होगी। बिना आपरेशन के भी ठीक हो जाएगा।'

एक सप्ताह में एक सौ बीस समाप्त हो गए; किन्तु प्रियम् को आश्चर्य-जनक लाभ हुआ। उसके पेट, कमर और सिर का दर्द बन्द हो गया। शरीर में चुस्ती दिखाई पड़ने लगी। अब डॉक्टर ने कीमती दवाइयाँ बन्द करा दीं और केवल एक रुपये रोज की दवा का नुस्खा बना दिया।

× × संगीत की मास्टरनी ने बताया था कि इनका स्वर मीठा है, जल्दी सीख लेती हैं, किन्तु घर पर अभ्यास नहीं करतीं। मैंने भी कई बार कहा तो बोलीं कि जब तुम चले जाते हो तब अभ्यास करती हूँ। किन्तु सच तो यह था कि वह अभ्यास करती ही न थी।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि यह दो-चार गाने सीख लेती, किन्तु शायद यह तो मेरी कोई इच्छा पूरी न करने का हठ किए बैठी थी।

दवा आदि की झंझट के कारण पन्द्रह-बीस दिन मास्टरनी को नहीं बुलाया था। इस बीच में इसने अभ्यास भी नहीं किया और अब स्थिति यह थी कि उसे एक भी गीत याद नहीं रह गया था। मास्टरनी ने साफ कह दिया कि इन्हें सिखाने से कोई लाभ नहीं।

इधर वह लालो और मुझ पर फिर पहरा लगाने लगी। मैं पहले से ही चिढ़ा बैठा था। धीरे-धीरे अन्तर्मुखी होने लगा। मेरी बुद्धि भी मानो चुनौती देने लगी—देखें, तुम कहाँ तक पहरा लगाती हो।

मैं धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिक ढंग से लालो पर छाए आतंक को दूर करने लगा। वह भी धीरे-धीरे मन से मेरे निकट आने लगी।

एक दिन मैं अपने प्रयोग में सफल हो गया।

लालो अपनी कापी जँचवाने के लिए मेरे पास छोड़ गई। कापी दिखाना बहाना-मात्र था। वह अपने मनोभाव दो 'क्तियों में व्यक्त कर

देना चाहती थी। पंक्तियाँ उसे कहाँ से मिलीं, मैं नहीं जानता, किन्तु मुझे आज तक याद हैं—

मैं हूँ कितनी पास पिया के, फिर भी कितनी दूर।
ज्यों नदी के दो किनारे, मिलने से मजबूर।।

संगीत का अभ्यास न चल सका, इससे मैं प्रियम् से कुढ़ गया। पहरा लगाना शुरू किया, इसलिए लालो से प्रेम-व्यापार बढ़ाने की लालसा हुई। दोनों ओर की कुढ़न-घुटन के कारण ही किसी छोटी बात पर झगड़ा हो गया। हम दोनों ही नहीं बोले। दूसरे दिन कर्क-चतुर्थी (करवा चौथ) का व्रत था।

× × चौथ के दिन प्रियम् मुँह भारी किये कार्य में लगी हुई थी। बर्तनों को पटकना और ठुकराना प्रारम्भ हो गया। गुस्से के मारे पढ़ने में मन नहीं लग रहा था। भोजन के काम-काज से छुट्टी पाकर वह चौके के पास ही लेट गई।

ध्यान आया कि रात के ८-९ बजे जब तक चन्द्रमा न निकल आएगा, यह अन्न-जल ग्रहण न करेगी। वह धूप में घूमकर कपड़े इकट्ठे कर रही थी। टोका, धूप में मत घूमो, मैं कपड़े इकट्ठे कर देता हूँ।

'रात से बोल नहीं रहे हो, अब बड़ी दया आ रही है।'

वह अपने काम में पुनः लग गई। चूल्हे के सामने जाने से रोका तो नहीं मानी। बिना बोले ज्यों-का-त्यों काम करती रही। मैंने भी निश्चय किया मरने दो। और क्रोध के आवेश में घर से निकलकर पार्क में घूमने चला आया। उसी बैंच पर जा बैठा, जहाँ एक बार अपने दाम्पत्य जीवन की विफलता पर बैठकर रोया था।

बचपन की अनेक घटनाओं के बारे में सोचते-सोचते एक करवा चौथ की याद आई। मैं बहुत छोटा था। पिताजी के साथ टट्टू पर बैठकर पास के कस्बे को गया था। रास्ते के एक सरोवर के निकट बैठकर मैंने सिंघाड़े तोड़ लिए। जंगल के रास्ते से निकलते समय कुछ जंगली फल तोड़ता गया।

घर पहुँचने पर माँ को शिथिल अवस्था में पड़ा देखा। करवा चौथ के

व्रत से बहुत ही थकी प्रतीत होती थीं। पिता ने बाजार से कुछ सिंघाड़े और सड़े अंगूर खरीदे थे।

मा उपवास-क्लिष्ट अवस्था में ही चूल्हे के पास बैठकर पूड़ी-कचौड़ी बनाती रहीं। हल्का अन्धकार होने पर मैं छत पर चढ़कर चन्द्रमा निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। बड़ी उतावली और घबड़ाहट महसूस कर रहा था—चन्द्रमा जल्द क्यों नहीं निकलता ? अम्मा के मुँह से सुनी भाई-बहिन की कहानी याद आ रही थी। सोच रहा था मैं भी कोई छल करके माँ को पानी पिला दूँ। किन्तु फिर यह भी याद आया कि व्रत टूटने से पाप पड़ेगा।

मेरा ध्यान टूट गया। गाली-गलौज और थप्पड़ों की आवाज आ रही थी। जिनके लिए व्रत किया गया था वे गरज रहे थे और जिसने व्रत किया था, वह रो रही थी। मैं झगड़े का कारण न जान सका। मैंने जो किया वह मुझे आज भी याद है। मैंने पिताजी के पीछे जाकर उनकी पीठ पर डंडा दे मारा—'बदमाश।'

बस, पिता का क्रोध मेरे गालों पर थप्पड़ों के रूप में बरस पड़ा। प्रत्येक थप्पड़ के पहले पूछा जाता—'अब तो नहीं कहेगा ?' और मैं प्रत्येक थप्पड़ पड़ने के पहले कहता—'खूब कहूँगा, बदमाश, बदमाश, बदमाश।'

माँ बोलीं, 'उसे क्यों मारते हो मुझे मार डालो।'

पिता बोले, 'सुअरिया की सन्तान है न।'

बचाती हुई माँ की पीठ पर एकाध धौल और पड़ गये।

चन्द्रमा निकला। माँ ने करवा की टोंटी से चन्द्रमा को अर्घ्य दिया। उनकी आँखों से आँसू झर रहे थे।

मेरी नन्ही सी छाती क्रोध से फूल उठी। मैंने प्रतिज्ञा की, बड़े होने पर माँ के आँसुओं का बदला लूँगा।

'माँ, तुम इस दुष्ट के सिंघाड़े और अंगूर न खाना। मैंने अपने हाथ से सिंघाड़े और जंगली फल तोड़े हैं, वही खाना। सिंघाड़े आग में भून लेना, अच्छा माँ !'

'भला, तेरे हाथ के ही खाऊँगी।'—पुत्र को छाती से लगाकर तो

माँ के हृदय का आवेग और भी उमड़ आया।

पता नहीं पुत्र के हाथ के फल खाए, या और कुछ खाया, या कुछ भी नहीं खाया।

किन्तु प्रातः बड़े तड़के ही मीठी मीठी नींद में मैंने चक्की की घरघराहट के साथ माँ के ललित कंठ का गीत सुना—

'अब रथ हाँक चले रघुनन्दन।'

प्रातः किसी बात पर माँ से झगड़ा हो गया और मैं फल माँग बैठा। विकार-रहित और मौन सहित माँ ने मुझे फल वापस कर दिए थे। फल ज्यों के त्यों थे, मैं देखकर सन्न रह गया था।

× × ×

मेरे व्यवहार में कहीं पिता के व्यवहार जैसी कठोरता तो नहीं है? मेरे लिए प्रियम् इतना कठोर व्रत किये हुए है और मैं हूँ कि उससे रूठा फिर रहा हूँ। झट लौट पड़ा। मैं कभी अपनी जिद नहीं तोड़ता किन्तु आज अपनी हार ही स्वीकार कर ली।

घर लौटकर देखा बरामदे में गुल गपाड़ा मचा हुआ है। मैं लौटकर कमरे में आ गया। थोड़ी देर में स्त्रियों की हास्य-ध्वनि और चूड़ियों की खनखनाहट सुनाई पड़ी। रेवा और लालो प्रियम् को खींचकर कमरे में ला रही थीं। वह आ नहीं रही थी। मैंने उसकी कलाइयों में ब्याह वाले गहने देखे। चढ़ावा वाली साड़ी भी पहने थी। लड़कियाँ उसके सिर से आँचल झपट रही थीं और वह अपने मुँह को छिपा रही थी।

बड़ी कठिनाई से प्रियम् ने मुँह खोला। मैं उसे देखकर अवाक् हो गया। यह इतनी सुन्दर भी लग सकती है! माथे पर चन्दन-कुँकुम की पत्र-रचना और सुन्दर तिलक था। बड़े कलात्मक ढंग से जूड़ा बनाकर उसे बेला के फूलों से सजाया गया था। प्रियम् ने लजाते हुए मेरे पैर छुए।

रेवा ने भी छू लिए। बोली—

'दादा मेरे घर पर नहीं आते?'

'कभी आऊँगा। सेन गुप्ता मिलते नहीं, नहीं तो उन्हीं के साथ आऊँ।'

'वे तो आजकल पार्टी के काम में बुरी तरह व्यस्त हैं। पार्टी का काम

करते समय उन्हें दीन-दुनिया की फिक्र नहीं रहती।'

'हाँ, कम्यूनिस्ट पार्टी के काम के सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं।'

'देखिए, भाभी को लेकर आइएगा।'

'यह नहीं जाएगी। तुम जिन बर्तनों में मछली खाती हो, उनमें तुम इसे नाश्ता-वाश्ता करोओगी?'

'उस समस्या का समाधान हो जाएगा। आप आइए तो सही।'

× × रेवा चली गई। लालो कभी अपने घर दौड़ जाती, कभी प्रियम् के पास जा बैठती। कहती, 'देखूँ तो सही, आप कैसे पूजन करती हैं।'

'मैं छत पर चढ़ गया। कहीं चन्द्रमा का पता नहीं। रस्सी बाँधकर मेज और कुर्सी ऊपर खींच ली। मेज पर कुर्सी रखकर फिर देखा। बेकार। मुझे एक-एक मिनट पहाड़ लग रहा था। बड़ी आतुर प्रतीक्षा के बाद लालिमा फूटी। मैं झट से प्रियम् को बुलाने नीचे आ गया। प्रियम् चौक पूर कर पूजा कर रही थी। उसने मुझे पाटे पर बैठने के लिए कहा। बैठ गया। माथे पर तिलक लगाकर मेरे चरणों पर उसने सिर रख दिया। भूख-प्यास से मुरझाए मुँह पर फीकी-सी हँसी उसे देवी जैसा रूप दिए थी। उसके करवे आदि लेकर छत पर पहुँचा। अब चन्द्रमा पूरा निकल आया था। उसने मेज पर खड़े होकर अर्घ्य दिया।

मैंने अपने हाथ से प्रियम् को अंगूर खिलाकर मौसमी का रस पिलाया।

शयन के पूर्व हथेलियों में प्रियम् का मुँह भरकर मैंने कहा—

'करवा चौथ का व्रत भी एक हथकण्डा है।'

'कैसा?'

'पति को दुम हिलाता कुत्ता बनाने का।'

'हूँ-ऊँ ऽऽ।'

'सच, जाने किस पुरखे के दिमाग में यह व्रत सूझा होगा। व्रत के रूप में तपस्या करके मूर्ख स्त्रियाँ भी अपने स्वामी का दिल जीत लेती हैं।'

'लेकिन तुम्हारा दिल तो पत्थर का है, उसे क्या कोई जीत सकता है?'

···मैंने देखा सड़क पर बड़ी चहल-पहल थी। चमार, धोबी, बनिया,

ठाकुर सभी घरों की स्त्रियाँ जिन्हें छत पर जाने का सौभाग्य नहीं मिलता, सड़क पर खड़ी होकर अर्घ्य दे रही थीं। उनके पैरों में आलता चमक रहा था। मैंने उच्छ्वसित-हृदय मन-ही-मन कहा—भारतीय नारी, तुम धन्य हो ! तुम चाहे जिस जाति की हो, तुम्हारे चरणों में प्रणाम निवेदित है।

सामने वाले कायस्थ परिवार की नववधू एम० ए० है। बड़ी फैशनेबल है। अरे, आज तो वह भी सिर ढके हुए पूजा की थाली लिए जा रही है। उसके पैरों में भी आलता है।

सती सावित्री का रक्त इनकी नसों में भी है। प्रणाम···शत्-शत् प्रणाम ! हे मातृजाति, यदि मैंने किसी की नारी के प्रति कभी कोई कलुषित-भाव रखा हो, तो क्षमा कर दो। मेरे नेत्रों से झर-झर बूँदें गिरने लगीं।

शयन के समय प्रियम् ने मेरी छाती पर कोमल उँगलियाँ रखते हुए कहा—'आज तुम्हारे पलक भीगे जान पड़ते हैं, क्या बात है ?'

मैंने उसके गालों पर पलक पोंछते हुए कहा, 'कुछ नहीं, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ।'

और सच ही मैं सुखभरी नींद में सो गया।

पन्द्रह

मेरे मन में फिर विद्रोह जगने लगा। यूनिवर्सिटी में अनेक देशों के युवक-युवती के दल आते। कितने स्वस्थ कितने चञ्चल। देखकर ईर्ष्या होती। सोचता कि इन चञ्चल हास्यमयी युवतियों को देखकर हमारा युवक समुदाय यदि विदेश जाने की बात सोचने लगे तो उसमें दोष क्या है? यूनिवर्सिटी में ही एक-से-एक सुन्दर एवं प्रतिभा-सम्पन्न तरुणियाँ पढ़ रही थीं। उनकी तुलना में प्रियम् को देखता तो ठेस लगती।

इधर प्रियम् की कुढ़न-जलन फिर प्रारम्भ हो गई।

मेरे एक मित्र बल्गेरिया से लौटे हैं। उन्होंने बताया कि वे जहाँ से निकले, उन्हें हर जगह विशेषतः पार्कों में युवक-युवती के जोड़े आनन्दमग्न दिखाई पड़े। उन्होंने बताया कि कम्यूनिस्ट देशों में युवक एवं युवतियों को जीवन के भोग में इतना सराबोर कर दिया जाता है कि वे राजनीति के बारे में सोच न पाएँ।

हमारे देश के नेताओं ने भी पश्चिम के युवक-समारोहों की नकल में भारत में इस प्रकार के आयोजन प्रारम्भ किए हैं। युवक-युवती बन्धन के वातावरण से छूटकर एकदम बन्धनहीन हुए तो संयम न कर सके। फलतः उन्होंने ऐसे आचरण किए जिन्हें घोर भ्रष्टाचार कहा जाता है।

सोचता हूँ जिसे भ्रष्टाचार कहा जाता है, वह क्या वास्तव में पाप और अनावश्यक है।

यूनिवर्सिटी की एक सहपाठिका बार-बार भारतीजी के एक उपन्यास की तारीफ करती हैं। मैं सोचता हूँ यह उपन्यास क्यों अच्छा बताया जाता है। युवक और युवती दोनों इसे क्यों पसन्द करते हैं। चन्द्र ने पम्मो से सम्भोग करने के बाद महसूस किया कि लोग सम्भोग को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु कहाँ, उसे तो चरम तृप्ति का अनुभव हुआ। मैंने अपनी इस सहपाठिका से कहा, 'पम्मो के यहाँ चन्द्र ने जो अनुभव किया। शायद उसी से सहमत होने के कारण आपको भारती जी का उपन्यास अच्छा लगता है।'

अब मैं सोच रहा हूँ मनचाही युवती का सान्निध्य एवं सहवास क्या वास्तव में सुखकर नहीं है ?

मैं लालो में वह सब कुछ पा रहा हूँ जैसी कल्पना करता था। इच्छा होती थी इसके साथ पानी में कूदकर साथ-साथ तैरते रहें। नाव खेएँ। पहाड़ों पर घूमें, जंगलों में दौड़ें। हिरणों और पक्षियों-जैसा फुदकता उल्लास मय जीवन व्यतीत करें।

मेरी समझ में नहीं आता मेरे मन में ये विचार क्यों आने लगे हैं। विवाह के पूर्व तक मैं पूर्ण संयमी रहा हूँ। ऐसे कौन से कारण हैं, जिन्होंने मेरे मन में सतत् ज्वलनशील बुभुक्षा जागृत कर दी थी।

रामू और सेनगुप्ता जैसे लोगों से मैं तर्क जरूर करता हूँ, किन्तु अब ऐसा लगने लगा है कि नैतिकता के विषय में वे जो कुछ बोलते हैं, वह मेरे ही अपने विचार हैं। ज्ञान के व्यक्तित्व से मुझे अवश्य बल मिलता है, शांति मिलती है और इच्छा होती है जिस मर्यादित पथ पर बढ़ा जा रहा था, उसी पर पूरी शक्ति से बढ़ चलूँ।

प्रियम् ने संगीत न सीखा। वह अपने ही टेढ़े रास्ते पर बढ़ रही थी, जहाँ मुझे सुख, शांति और संतोष न मिलता।

अपने भीतर के नग्न-पशु को देखकर मैं न लालो के सामने आता और न किसी युवती से ही मिलता। लता का विवाह इन्हीं दिनों हो गया। मैं लता के कारण ही विवाह में अधिक सक्रियता न दिखा सका।

मेरी विद्रोह-भावना पर घृताहुति का कार्य किया रामू की पुनः उपस्थिति ने।

प्रियम् रामू के चरित्र के विषय में जानकर पहले जितनी असंतुष्ट रहती थी, अब न जान पड़ी। रामू खाने के लिए तरह-तरह की चीजों की फरमाइश करता, वह बड़ी रुचि से बनाती। रामू एक-एक चीज बड़े स्वाद से प्रशंसा करता हुआ खाता। प्रियम् पुलकित हो जाती।

दीपावली के दिन वह यहीं रह गया था। प्रियम् ने पीली साड़ी पहन रखी थी। वह इठलाकर दुहरी होती हुई मनोरम लग रही थी। रामू बाजार से हाँडी-भर रसगुल्ले ले आया। अन्य मिठाइयों के साथ उसके रसगुल्ले भी प्लेट में रखकर प्रियम् रामू के पास ले आई। रामू ने सब-की-सब मिठाई खाकर रसगुल्ले छोड़ दिए। प्रियम् के बहुत हठ करने पर बोला, 'यदि भाभी अपने हाथ से खिलाएँ तो खा लूँ।'

प्रियम् सुनकर खिलखिलाहट में दुहरी होने लगी।

मैंने अपनी पुस्तकें उठायीं और कमरा छोड़कर बरामदे में आकर पढ़ने बैठ गया।

प्रियम् तुरन्त मेरे पीछे चली आई—

'रसगुल्ला खाओगे ?'

'न।'

'तुम उदास कैसे हो ?'

'नहीं तो ।'

'तो एक रसगुल्ला खा लो ।'

'तुम जानती हो भोजन के पश्चात् चार घण्टे तक कुछ न खाने का मेरा नियम है ।'

'तो आज खा लो ।'

'आज के रसगुल्ले में कौन-सी विशेषता है ?'

'मैं कह रही हूँ इसलिए ।'

बैठक वाले कमरे से रामू ने पुकारा, 'देखो, कोई साहब मिलने आए हैं ।'

पातीराम आया था । उसने पैर छू लिए । मैंने प्रतिवाद करते हुए कहा भी, 'अब तो तुम लोग भली-प्रकार नमस्ते भी नहीं करते, पैर कैसे छू रहे हो !'

'आप सच्चे ब्राह्मण हैं, आपके पैर छूने में मुझे संकोच नहीं होता। उस पर भी गाँव के नाते मैं आपका छोटा भाई हूँ ।'

'तो अछूत बनकर नहीं आये हो न ?'

वह हँस पड़ा—'मैं तो अछूत बनकर नहीं आया हूँ, लेकिन शायद भाभी बना दें ।'

उसी समय प्रियम् मिठाई की तश्तरी लेकर आ गई । प्रियम् के इस व्यवहार से मुझे प्रसन्नता हुई । वह मिठाई खाते हुए बोला—

'पण्डितजी ! बहुत दिनों से आपके घर आना चाहता था । आज दीपावली के दिन घर की बहुत याद आई । सोचा पण्डितजी का घर भी तो अपना ही घर है, इसलिए चला आया ।'

'तुम्हें देखकर मुझे सच ही खुशी हुई । तुम हरेक त्यौहारको हो जाया करो । हम दोनों को भी अच्छा लगेगा ।'

'पण्डितजी, अगले मास में हम लोग एक सप्ताह के लिए अमेरिका जा रहे हैं ।'

'किस सम्बन्ध में ?'

'सांस्कृतिक डेलीगेशन जा रहा है।'

'और कौन-कौन जा रहा है ?'

'प्रोफेसर विनोद शर्मा, सुरेश गुप्ता, एच० माइकेल और शम्सुद्दीन अहमद।'

'सांस्कृतिक डेलीगेशन है बहुत बढ़िया। पूरी शंकर की बरात है। प्रो० शर्मा जा रहे हैं नंगी बाँहों वाली गोरियाँ देखने। सुरेश गुप्ता यह बताने जा रहे हैं कि अर्जुन की पत्नी कुन्ती थीं, कबीर कृष्णभक्त थे अथवा शायद क्रिकेट और सिनेमा-जगत् के दास्तान सुनाने जा रहे हैं। तुम जा रहे हो नवीन बौद्ध मत की शिक्षा देने। शेष दो को मैं जानता नहीं। हाँ, इतना अवश्य जानता हूँ कि इंडिया में सेकुलरवाद है—ऐसा दिखाने के लिए अछूत, ईसाई और मुसलमान भेजे जा रहे हैं।'

'पंडित जी, शेष दो के बारे में मैं बताए देता हूँ। अहमद मियाँ के चचाजान पिछले महीने पाकिस्तान भाग गए हैं। पिछले पन्द्रह अगस्त के दिन, जिन मुसलमानों ने काले झंडे लगाकर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाए थे, उनके नेता अहमद के वालिदजान थे। माइकेल के फ़ादर होटल चलाते हैं। होटल के भीतर घुसते ही आपको लगेगा कि योरुप में पहुँच गए हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह होटल अमेरिका के गुप्तचरों का अड्डा है।'

'नेहरूजी के राज्य में भारत का उत्थान खूब योजना-पूर्वक हो रहा है। अमेरिका को तुम लोग कौन-सा सांस्कृतिक सन्देश देने जा रहे हो ?'

'पंडितजी, सन्देश देने वाले आपकी तरह यहीं सड़ते रहते है। जो तिकड़म भिड़ाना जानता है, उसे चाँस मिलता है। खैर, आप गाँव कब से नहीं गए ?'

'मैं तो जून से ही नहीं गया।'

'मैं दशहरा की छुट्टी में हो आया हूँ।'

'क्या हाल हैं ?'

'शोषित-संघ का नाम सुनाई पड़ रहा है।'

'किन लोगों में ?'

'काछी, कहार, लोधी, अहीर आदि में। ये कहते हैं कि बाँभन, ठाकुर

और लाला ने हमारा शोषण किया है। हम संगठित होकर इनसे संघर्ष करेंगे।'

'इन जातियों के अतिरिक्त भी तो जातियाँ हैं।'

'सो तो पंडितजी, एक मजेदार घटना हुई। गाँव के बाहर शोषित-संघ के नेता का खेत है। वहाँ वे साग-सब्जी उपजाते हैं। कुएँ से केवल सिंचाई का काम लेते हैं। उस कुएँ पर कुछ हमारी बिरादरी के और कुछ भंगी लोग पानी लेने जाया करते थे। इस बार दशहरा के दो-चार दिन आगे उन्होंने भंगी धानुकों के सिर लाठी से फोड़ दिए और पानी भरना बन्द करा दिया है।'

'जय हो शोषित-संघ की।'

'जब से पंचायतों के चुनाव शुरू हुए, जातिवाद की खुराफात और बढ़ी है।'

'तुम ठीक कहते हो, पातीराम। मेरे मित्र ज्ञानजी भी कह रहे थे कि आज सभी नेताओं के आगे केवल एक प्रश्न है—अधिक-से-अधिक वोट कैसे मिलें ?'

'हमारे नेताओं के आचरण में कर्त्तव्य की भावना रह नहीं गई। सब के सब अधिकार भोग रहे हैं और अधिकार भोगने की सीख दे रहे हैं। पंडितजी, अधिकार तो वोटों से ही मिलेगा।'

'और वोट हथियाने की कला में तुम भी दक्ष हो रहे हो।'

'न होता तो आपकी तरह किताबें भले घोंकता किन्तु अमेरिका जाने का चांस न पाता।'

''''पातीराम के चले जाने पर रामू ने पूछा—'यह कौन था ?'

'मेरे गाँव का एक अछूत विद्यार्थी।'

'बड़ा चलता हुआ जान पड़ता है।'

'तुम कौन कम हो।'

पातीराम की तश्तरी मैं ही उठा लाया। जब नल के नीचे धोने लगा, प्रियम् ने आकर हाथ से तश्तरी छीन ली।

बिछौने पर आकर सोचने लगा मैं कितना स्वार्थी और ईर्ष्यालु हूँ!

क्या प्रियम् किसी से हँसे-बोले भी नहीं। यदि मेरी बुद्धि इतना भी स्वीकार नहीं कर सकती तो अच्छा है कि उसे पर्दे में रखूँ। मैं कितनी ही लड़कियों से मिलता, हँसता, बोलता हूँ। उसने ही ऐसा क्या अपराध किया है ?

सोलह

आज प्रातः ६॥ बजे की गाड़ी से रामू इटावा लौट जायगा। हम दोनों तड़के उठकर उसकी तैयारी कराने लगे। चाय-नाश्ता के उपरान्त रामू अपना सामान ठीक करने लगा। प्रियम् ने मुँह धो-पोंछकर माथे पर लम्बा तिलक लगाया। रामू सबसे विदा लेकर रिक्शे में बैठ गया। प्रियम् मुस्कुराती-इठलाती खड़ी रही। रामू मुड़-मुड़कर देखता जाता। जब तक दिखलायी पड़ सकते थे, दोनों देखते रहे।

मैं प्रसन्नता-अप्रसन्नता से रहित मौन खड़ा रहा। चुम्बन वाली घटना के पश्चात् लालो और प्रियम् के विषय में जो प्रतिज्ञा की थी, वह फिर दुहरा ली।

लालो बैठक से होती हुई भीतर जाने लगी। मैंने स्वर में मिठास भर कर कहा—'लालो!' वह रुक गयी।

'बहिनजी कहाँ हैं ?'

'नहा रही हैं। तुम मुझसे कटी हुई सी क्यों रहती हो ?'

'नहीं तो।'

'नहीं तो कैसे, खूब रहती हो।'—कहकर मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसकी सारी देह काँपने लगी। हाथ थरथरा रहा था।

'मेरा हाथ छोड़ दीजिए। आपके घर में घुसते ही मेरे दिल की धड़कन बढ़ जाती है।'

'एक प्रश्न का उत्तर दे दो, हाथ छोड़ दूँगा; प्यार करती हो ?'

उसने पलकों को एक खास ढँग से झपकाते हुए स्वीकार कर लिया।

मैंने उसे छोड़ दिया। वह भीतर चली गयी।

× × यूनिवर्सिटी से लौटते समय ज्ञान मेरे साथ था। हम दोनों पैदल ही गोमती के पुल के ऊपर से निकलकर आगे बढ़ रहे थे। सेनगुप्ता से भेंट हो गयी।

'भई, कहाँ रहे ?'

'कुछ दिन के लिए कलकत्ता चला गया था। एक काम में मेरी सहायता करो।'

'बोलो।'

'यहाँ एक होटल है, उसका मालिक ईसाई है।'

'माइकेल ?'

'हाँ वही। मेरा उससे झगड़ा हो गया। देखो तो हिन्दुस्तान में रहता है और कहता है, साले हिन्दुओ, यहाँ ईसाई न होते तो तुम्हें रहने-सहने की तहजीब न आयी होती। अभी यह मत समझो अंग्रेज यहाँ से चले गये हैं। जरा इसको ठीक करना है। हम हिन्दुओं का खाकर हमारे प्रति ही यह धारणा।'

'सुना है वह होटल तो विदेशी गुप्तचरों का अड्डा है।'

'यार, पता नहीं सरकार क्या कर रही है ? झारखंड में इन्होंने बड़ा उत्पात मचाया। वहाँ यूनियन जैक फहराया गया। लाखों हिन्दू ईसाई बनाये जा रहे हैं। चीन में जागृति आयी है। वहाँ से सारे मिशनरी भगा दिये गये। अब ये हिन्दुस्तान में घुस आये हैं। आसाम के नागाओं को इन्होंने ही भड़काया है। जगह-जगह अस्पताल और स्कूल के बहाने ईसाई मत फैला रहे हैं।'

ज्ञान बोला—'ईसाई मत फैला रहे हैं तो हानि क्या है ? गरीब लोगों की सेवा तो करते हैं ?'

'सेवा करने के लिए ईसाई नहीं बना रहे हैं, ये अपने समर्थकों का जाल फैला रहे हैं। जो लोग ईसाई हो जायँगे वे अपने देश के साथ गद्दारी कर ईसाई मुल्कों का साथ देंगे।'

'अच्छा मित्र, पहले यह बताओ मुझे पहचाना कि नहीं ?'

मैंने दोनों का परिचय कराना चाहा। ज्ञान रोककर बोला, 'तुम अभी ठहरो।' सेनगुप्ता ध्यान से देखता बोला, 'मैं नहीं पहचान सका।'

'किन्तु मैंने आपको पहचान लिया। साल डेढ़ साल पहले अमीनुद्दौला पार्क के पास एक ईसाई पादरी हिन्दुओं की निन्दा कर रहा था, रामकृष्ण को गालियाँ दे रहा था। भीड़ उत्तेजित थी, किंतु आप ईसाई पादरी का पक्ष लेकर कह रहे थे उसे प्रचार करने की स्वतन्त्रता है। मुझसे आपकी बहस हो गयी थी। आप कहना चाह रहे थे कि अगर हिन्दू ईसाई हो जाते हैं तो क्या बिगड़ता है! मैंने उस दिन हिन्दुओं के पक्ष में जो तर्क दिये थे, वही आज आप मेरे सामने दुहरा रहे हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आज अचानक आपके मन में हिन्दू-प्रेम कैसे जाग उठा?'

सेनगुप्ता के कुछ कहने के पूर्व-ही मैं बोल उठा—'असल में ईसाइयों का विरोध ये अन्य दृष्टिकोण से करते हैं। ईसाई हैं अमेरिका वालों के पक्षपाती। और हमारे मित्र सेनगुप्त उस दल के हैं जो रूस और चीन की बरसात देखकर यहाँ छाता लगाकर चलते हैं। रूस और अमेरिका में पटती नहीं है, अतएव कामरेड लोग ईसाइयों के विरोधी हैं। इधर केरल में इनकी हुलिया तंग है ही।'

मैं जानता था कि सेनगुप्ता और ज्ञान आपस में उलझ गये तो घंटे-डेढ़ घंटे तक जूझते रहेंगे। मैं बंगला में बोला, 'आज तो नहीं कल शाम को घर आना, यूनिवर्सिटी के भी दस-पाँच लड़के ले आऊँगा, तभी होटल चलेंगे। शक्ति के साथ जायँगे तो वह बात भी सुनेगा। बस, कल ही आओ, तभी और बातें भी होंगी। चम्पा, फूलेर गन्ध, हाँ ऽ—'

सेनगुप्ता के गलफड़े फैल गये। वह सिगार पीता हुआ गोमती की ओर चला गया।

कुछ ही आगे बढ़ने पर एक बड़े-बड़े सींगों वाली गाय बड़ी तेजी से भागी हुई आयी। लोग इधर-उधर भागने लगे। सामने एक युवती बच्ची के साथ जा रही थी। युवती चीख कर एक ओर भागी और बच्ची घबड़ा कर गाय की ओर ही दौड़ने लगी। गाय बिल्कुल करीब आने को हुई। मैं एकदम मूढ-सा खड़ा रह गया। इसी बीच ज्ञान ने बिजली की फुर्ती से कूद-

कर बच्ची को उठा लिया। उठाते-उठाते गाय के पैने सींग ज्ञान को छूने को हुए कि उसने झट बाँया पैर पीछे हटाकर शरीर सिकोड़ लिया। गाय के सींग आगे हो गये। ज्ञान ने दायें हाथ का मुक्का पूरी ताकत से उसके जबड़े पर मारा। गाय उसी रफ्तार से भागती हुई चली गयी। रोती हुई बच्ची को उसकी माँ के पास पहुँचाकर ज्ञान मेरे पास आ गया।

मैंने कहा, 'आज तो आपका कबड्डी का खेल काम दे गया।'

'वह तो जीवन के प्रत्येक क्षण में काम देता है।'

× × × मैंने घर आकर लेटरबक्स में एक पत्र डाल दिया और उसे हिलाकर फिर सड़क की ओर चला आया। प्रियम् बाहर आकर पत्र निकाल ले गयी। मैंने सवेरे ही एक जाली पत्र लिख लिया था। अपने नाम के एक पुराने लिफ़ाफ़े पर पता में उसका नाम लिखकर उसके भीतर पत्र रख दिया था। मैं जानता था प्रियम् मुहर आदि की जाँच न कर सकेगी और धोखा खा जायगी। पत्र इस प्रकार था—

प्रिय,

तुम्हें पत्र लिखने में भय का अनुभव कर रहा हूँ। तुम्हें अपने पति की सौगन्ध है, पत्र किसी को न दिखाना। सच बताओ तुमने दीपावली के दिन क्यों शृंगार किया था ? मैं तुम्हारे तिलक वाले मुख की शोभा भूल नहीं पाता। मैं प्यार के एक आश्वासन को छोड़कर और कुछ नहीं चाहता। केवल एक छोटा-सा संकेत कि तुम मुझे प्यार करती हो।

साथ में एक लिफ़ाफ़ा रख दिया है। मैं अपना नाम तुम्हें बताना नहीं चाहता इसलिए उर्दू में पता लिखा है। आशा है तुम अवश्य ही उत्तर दोगी। मैं जानता हूँ तुम्हारे घर में जिसके नाम का पत्र होता है वही खोलता है। इसलिए डाक से पत्र दे रहा हूँ।

तुम्हारे चरणों का दास—
कोई।

मैंने पत्र इस प्रकार लिखा था कि प्रियम् को विश्वास हो जाय कि पत्र रामू का है। उर्दू में पता लिखा जो लिफाफा रख दिया था, उस पर मैंने

अपना ही यूनिवर्सिटी का पता लिख दिया था। अब अगर प्रियम् रामू को कुछ भी लिखती तो वह मेरे ही पास आता।

प्रियम् के सतीत्व की कड़ी परीक्षा थी। पैर दाबने, चरणामृत लेने और मेरे कष्टों पर आँसू बहाने में कहाँ तक सार है? आज प्रियम् की ही नहीं, *भारतीय पत्नी के चरित्र की परीक्षा थी।*

मैं घर आ गया। प्रियम् के मुख पर कोई परिवर्तन नहीं था। मैंने भी अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं किया। शाम को खाते समय उसकी आँखों में आँसू आ गए और वह थाली खिसका कर उठ गई। मैंने रोने का कारण पूछा तो बोली, 'घर से चिट्ठी आई थी, अम्मा की तबीयत ठीक नहीं।'

मैंने चिट्ठी देखनी चाही। वह बोली, 'मैंने चूल्हे में जला दी।'

रात्रि को सोते समय मैंने उसे बताया कि रामू ने यूनिवर्सिटी के पते पर एक कार्ड डाला था, पेंसिल से लिखा था। मैं उसे विश्वास कराना चाहता था कि उसके पास जो पत्र आया है वह रामू का ही है, क्योंकि रामू बनकर मैंने जो पत्र लिखा था वह भी पेंसिल से लिखा गया था।

उसने शंका प्रकट की—'आज सवेरे रामू गए और तुम्हें आज ही दोपहर के बाद यूनिवर्सिटी में पत्र कैसे मिल गया?'

'स्टेशन पर पहुँचकर डाल दिया होगा।'

'क्या तुमने रामू को बताया है कि हमारे घर में जिसके नाम पत्र आता है, वही खोलता है।'

'हाँ, बताया तो है। ऐसा करना भी चाहिए। दूसरे के नाम का पत्र कोई क्यों खोले? लेकिन तुमने यह पूछा कैसे?'

'कोई खास बात नहीं, रामू एक दिन ऐसा कह रहे थे।'

'रामू तुमसे इस विषय में ऐसा क्यों कह रहे थे?'

प्रियम् घबरा गई। उसका मुँह सफेद पड़ गया। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि प्रियम् और रामू एकांत नहीं पा सके हैं। रामू प्रातः तड़के उठकर रात को ही घर लौटा है। प्रियम् यदि परीक्षा में फेल हुई तो यह उसका मानसिक पाप ही होगा। किन्तु यदि वह सच ही फेल हुई तो मेरी मान्यता

पर जबरदस्त आघात लगेगा ।

दूसरे दिन सवेरे उठकर मैंने रामू के लिए पत्र लिखकर लिफाफे में रख दिया और प्रियम् को दे दिया। जब वह पढ़ चुकी तो उससे कहा, तुम भी कुछ लिख दो उसे। मैं नहीं देखूँगा। बन्द करके टिकट चिपका देना। पहले तो वह हँसकर टालती रही, फिर लिखकर लिफाफा चिपका लाई। मैं पोस्ट आफिस जाने का बहाना करके निकल पड़ा। कुछ दूर आगे जाकर लिफाफा फाड़ डाला। प्रियम् ने इस प्रकार पत्र लिखा था—

प्रिय रामू बाबू,

नमस्ते।

हम दोनों को आपकी याद आती रहती है। मैंने आपको सपने में देखा है। याद न भुला देना।

आपकी भाभी—।

वैसे यदि देखा जाय तो पत्र अत्यन्त साधारण था। उसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति कोई भी धारणा नहीं बना सकता। किन्तु अन्य स्थितियों के मध्य रखकर पत्र पर विचार करना होगा। उसे मन-ही-मन सत्य विश्वास हो गया था कि पत्र रामू ने लिखा है, फिर उसने उसे क्यों लिखा कि सपने में देखा है, याद न भुला देना। यदि वह पूर्णतः सती होती तो क्या इस प्रकार की भाषा उस व्यक्ति के प्रति लिखती, जो कि उसे प्रेम-पत्र लिख चुका है। (भले ही वह जाली हो।)

मैंने पत्र पढ़कर नाली में फेंक दिया।

दोपहर के समय मैंने अपने जीवन की कठिनाइयों का वर्णन किया। सुनकर वह रो पड़ी। उसके अश्रु भ्रम में डालने लगे कि मेरे प्रति उसके मन में सत्य भावना है।

पिछली तरकीब के अनुसार फिर एक पत्र अपने ही लेटर बक्स में डालकर मैं खिसक आया। इस पत्र में रामू की ओर से साधारण प्रेम-प्रदर्शन के साथ-साथ अनुरोध किया था कि बड़े दिन की छुट्टी में अपने पति से हठकर वह जरूर इटावा आए।

सन्ध्या समय इधर-उधर की बातचीत करता रहा। उससे पूछा बड़े

दिन की छुट्टी में कहाँ चला जाए। वह बोली—'जहाँ तुम्हारी तबियत।'

'यदि इटावा की नुमायश देखने चलूँ तो ?'

'चलो। लेकिन ठहरोगे कहाँ ?'

'और कहाँ ठहरेंगे ! रामू हमारे यहाँ आता रहा है, हम भी वसूलकर लाएँ। तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है उसके यहाँ ठहरने में ?'

'मुझे कोई आपत्ति क्यों होगी ?'

× × अब मेरा मन पुस्तक पढ़ने में न लगता। प्रियम् के मस्तिष्क को घड़ी के पुर्जों-सा पढ़ लेने का आग्रह बढ़ने लगा। बैठे-बैठे कई स्कीमें बनाता रहता, कैसे इसके पातिव्रत धर्म का पोस्ट मार्टम करूँ !

सोते समय परिहास के स्वर में कहा—'तुमने अपने यारों के सम्बन्ध में नहीं बताया ?'

'कोई रहा हो तो बताऊँ।'

'तुमने किसी से प्रेम न किया हो, किन्तु यह तो हो सकता था कि तुम्हें कोई प्रेम करता हो।'

'मुझे किसी ने नहीं किया।'

'डरो मत, यदि किसी ने किया भी होगा तो तुम्हारा क्या दोष ?'

'वाह, जब किया ही नहीं तो क्या बताऊँ ?'

'अच्छा, तो तुम्हें कभी किसी ने प्रेम-पत्र लिखा ?'

'नहीं लिखा।'

'मेरी सौगन्ध ?'

'तुम्हारी सौगन्ध।'

'मेरे सिर पर हाथ रखकर तीन बार सौगन्ध खाकर कहो कि नहीं लिखा।'

उसने मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा—'तुम्हारी सौगन्ध मुझे आज तक किसी ने प्रेम-पत्र नहीं लिखा, नहीं लिखा, नहीं लिखा।'

फिर वह खिलखिला कर बोली—'आहा, तुम्हें विश्वास ही नहीं होता।'

मेरा सारा शरीर सुन्न पड़ गया। अपने मरने की बात करता था तो

यह रो पड़ती थी और मुझसे बहुत रुष्ट हो जाती थी—तो यह क्या ढोंग था ! पोटैशियम साइनाइड वाली बात पर यह रो पड़ी थी, तो यह क्या पाखंड था ! मेरे सामने तो सत्य यह था कि इसने निर्लज्जों के समान हँस कर और मेरे सिर पर हाथ रखकर तीन बार झूठी कसम खाई थी।

मुझे चिंतित देखकर बोली, "तुम उदास क्यों हो ? तुम्हें मेरी सौगन्ध कोई चिन्ता न किया करो। खाओ मेरी सौगन्ध कि चिन्ता न करोगे।'

'चेष्टा करूँगा कि चिन्ता न करूँ, किन्तु सौगन्ध कैसे खाऊँ ! मान लो सौगन्ध के बाद चिन्ता आ ही गई तो सौगन्ध झूठी तो हो जाएगी। मैं झूठी सौगन्ध नहीं खा सकता।'

वह कुछ उदास हो गई। मैंने पातिव्रत के कुछ उदाहरण दिए। सावित्री आदि के सतीत्व का प्रोज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया। सुनकर वह रो पड़ी। पूछा, 'अकारण क्यों रोईं ?' बोली, 'तुम्हारा स्वास्थ्य देखकर।'

मैं अति मानव बनने की चेष्टा करता हूँ, मेरे पास अतुल चिंतन-शक्ति, अपरिमेय अनुभवजन्य ज्ञान और साथ ही विह्वल-हृदय हैं, किन्तु मैं क्या पा सका ! केवल स्वार्थ और अविश्वास का नग्न-रूप दर्शन। फलतः आज मैं संगीहीन हूँ, विश्वास के भित्तिहीन शून्य स्थान पर दिशाहारा-सा खड़ा हूँ।

...प्रातः भोजन के उपरांत यूनिवर्सिटी जाने के लिए चला। प्रियम् ने पान देकर उदास दृष्टि से देखा। मेरा दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर उसने चूम लिया। मैंने केवल उसके सिर पर हाथ फेर दिया। घर से बाहर निकलते समय मुड़कर देखा, उसकी आँखें भरी हुई थीं। मैंने मन-ही-मन उसका त्याग उसी प्रकार कर दिया था, जैसे शंकर ने सती का। किन्तु व्यवहार में कहीं कठोरता एवं उपेक्षा नहीं आने दी।

पढ़ने में मन नहीं लगा। अतएव शीघ्र लौट आया। मुझे देखकर प्रियम् कठोर मुद्रा बनाए मेज पर बैठी रही। फिर आदेश देती हुई बोली, 'आओ, मेरे पास बैठो।' मैं कुर्सी पर बैठ गया। वह बोली—

'मैं कहती हूँ यहाँ मेरे पास बैठो।'

'लीजिए बैठ गया, आज्ञा ?'

उसने चिट्ठी मेरे हाथ में दे दी। मैं पढ़ने लगा और वह रोने लगी। पूछा—'चिट्ठी किसकी हो सकती है ?'

'रामू की।'

'नहीं उसकी लिखावट नहीं है।'

'तुम तो ऐसी कहोगी ही, तुम्हारा मित्र है इसलिए।'

'तुम्हारा कोई दोप नहीं, लेकिन जो पूछूँ सच बताओ। तुम्हें यह पत्र कब मिला ?'

'आज।'

'झूठ, कल मिला होगा ?'

'नहीं, आज।'

'तुम झूठ बोल रही हो।'

'मैं अपने भाइयों की सौगन्ध खाती हूँ।' सिसकियों में उसका स्वर डूब गया।

'पाप कर रही हो, झूठी सौगन्ध खा रही हो। पहला पत्र कहाँ है ?'

'नहीं मिला।'

'झूठ।'

'सौगन्ध खाकर कहती हूँ।'

'तुम्हारी सौगन्ध का रत्ती-भर मूल्य नहीं। मैं तुम्हारे सामने ही चिट्ठी फाड़कर फेंक रहा हूँ, जिससे तुम्हारी कोई हानि न हो। किन्तु जब तक तुम यह निश्चय न कर लो कि सच-सच न बोलोगी, तब तक इस विषय में कोई बात नहीं करना चाहता।'

हठात् साले साहब आ गए। वह घबड़ा गई। मैंने स्थिति सम्भालते हुए कहा, 'तुम्हारी बहिन अस्वस्थ रहती है। कह रही है कि माथे में बेहद दर्द है।'

···रात को पैर दबाते समय मैंने आदर के साथ उसे टोका। वह नहीं मानी। पैर दबाने के बाद आँसुओं से मेरे पैर भिगोती हुई बोली—'तुम जो कह रहे थे, वही सच है। मुझे माफ़ कर दो।'

'तुम डोल गई थीं ?'

'नहीं।'

'तो फिर जिस दिन पत्र मिले, उसी दिन क्यों नहीं दे दिये थे।'

'मैं बुरी तरह घबड़ा गई थी।'

'मेरी झूठी कसम क्यों खाई ?'

'वह भी घबड़ाहट में।'

मैं थोड़ी देर के लिए चिन्तत हुआ। सच ही हिन्दू-स्त्रियों में यह दुर्बलता है कि यदि कोई लम्पट दुर्व्यवहार करे तो लम्पट के डर के मारे अपने घर पर नहीं कहतीं और उनकी इसी दुर्बलता का लाभ लम्पट उठाते रहते हैं। किन्तु एकदम याद आ जाने पर मैंने कहा—

'लेकिन क्या पत्र भी घबड़ाहट में लिखा था 'सपने में दिखाई देते हो', 'याद न भुलाना'—तुम्हारा मन उसकी ओर न होता तो क्यों ऐसा लिखती ? बड़े दिन की छुट्टी में उसके यहाँ जाने के लिए भी तैयार थीं।''

वह रोने लग गई। रोते-रोते बोली, 'कैसे समझाऊँ ? लगता है तुमने ही रामू की लिखावट बनाकर ये जाली पत्र लिखे थे।'

'तुम्हें जाली लगे थे तो तुम्हें तुरन्त मुझसे कहना चाहिए था, फिर तो घबड़ाहट की बिलकुल आवश्यकता न थी। अब तो चाहे जाली हो या सच्चे, यह मालूम हो गया तुम कितने गहरे पानी में हो।'

वह बिलखती हुई उठी। मैंने अपनी खाट पर सोने के लिए नहीं कहा, वह अपनी खाट पर जाकर लेट गई। शायद रात-भर सिसकती रोती रही।

× × प्रातः लालो गुलाब के फूलों का गुलदस्ता लाई। मेरी मेज से हट कर जैसे ही जाने लगी, मैंने उसे पकड़कर चूम लिया। वासना के कारण मैंने नहीं चूमा था। क्यों चूमा, उस समय मैं नहीं जानता था। मैंने देखा वह थर-थर काँप रही है। मैं स्वयं तेजी से बरामदे में जाकर उलट-पुलट करने लगा, जिससे प्रियम् न जाने कि मैं लालो से मिल चुका हूँ। लालो भी इस बीच में प्रकृतिस्थ हो जाएगी। लालो के मुख की भीनी गन्ध का अभी भी मुझे अनुभव हो रहा था। बल्कि रात को भी मुझे लगा उसके गरम निःश्वास मेरे कपोलों पर छा रहे हैं। अजीब बेचैनी में रात कटी।

सत्रह

ज्ञान रेडियो टॉक सुन रहा था। विषय था 'भारत के आदिवासी।' वार्ताकार थे कोई पाण्डे महोदय। वार्ता के अंत में पाण्डेजी ने स्वर को गंभीर बनाकर कहा—'यदि आदिवासियों में चेतना और संगठन होता तो आज भारत का नक्शा भिन्न होता।'

ज्ञान हँसकर बोला—अभी तक तो द्रविड़ कषागम वाले ही अपने को राक्षसों की संतान बताकर हम सबके लिए नारे लगाते रहे हैं—'आर्यो, भारत छोड़ो।' अब ये पाण्डे जैसे लोग नयी-नयी खोजों के जोश में आदिवासियों को पथ सुझा रहे हैं कि चेतना और संगठन द्वारा भारत का नक्शा बदलो। आसाम के नागाओं ने शुरू कर ही दिया है। इन दुष्टों से यह न होगा कि भारतीय राष्ट्रीयता की रक्षा करें और ऐसी बात कहें जिससे सारा भारत एक हो।'

'लेकिन ज्ञानजी, रिसर्च में सत्य का आग्रह होता है।'

'तुम साहित्यिकों की खोजों में सत्यता है या नहीं, यह तो सन्देहात्मक बात है, किंतु सन्देह-मुक्त बात एक ही है, तुम लोग भी देश की एकता को खंड-खंड कर रहे हो। तुम सबकी मान्यताएँ ही बस इस मूल-तत्व पर आधारित हैं कि आर्य भारत के बाहर से आये।'

'हाँ, यह बात आपने मार्के की कही है। मैं भी अपनी खोजों में एक कठिनाई का अनुभव कर रहा हूँ। यदि सच ही यही प्रमाणित हुआ कि आर्य भारत के ही थे, तो अभी तक सारी मान्यताएं और निष्कर्ष झूठे हो जायँगे। मैं कौन-सी धारणा लेकर चलूँ तय नहीं कर पाता।'

'आप लोगों के बीच एक उपन्यास की बड़ी चर्चा है—बूँद और समुद्र। इसके लेखक की भी एक नयी खोज बता रहा हूँ। एक स्थान पर कहा गया है कि कौशल्या अनार्य जाति की थीं क्योंकि उनके पुत्र राम काले थे। कैकेयी को आर्य-कन्या माना है। लेखक नागरजी को शायद यह नहीं मालूम कि भरत भी काले थे। तब कैकेयी कैसे आर्य-कन्या हो गयी? भाई रंजन, अब तो मैं निराश होने लगा हूँ।'

'तुम और निराश ? तुम लोगों को मैंने कभी निराश होते नहीं देखा।'

'आखिर धैर्य की भी एक सीमा होती है। यह हिन्दू समाज बड़ा एहसान फरामोश होता जा रहा है। केवल एक व्यक्ति का उदाहरण दे रहा हूँ, उसी से समझ सकते हो किस प्रकार के व्यवहार हमें सहने पड़ते हैं। पिछली बार के दंगे हुए तो मेरे मुहल्ले के तिवारीजी आकर बोले, 'यदि मुसलमाने आक्रमण कर दें तो तुम्हारा संघ क्या करेगा" मैंने कहा, 'चादर तानकर सोयेगा।' तिवारी बिगड़कर बोले, 'फिर हिन्दू समाज और संस्कृति का दम क्यों भरते हो ?' मैंने उन्हें बताया कि हम व्यक्तियों को अपनी रक्षा स्वयं करने के लिए समर्थ बनाते हैं। यह नहीं करते कि तिवारी जैसे लोग तो घरों में पैर फैलाकर सोएँ और हम लोग लाठी लेकर रात-भर पहरा दें। यदि पहरा ही लगाना है तो सारे मुहल्ले के लोग मिलकर लगायें। खैर, तिवारीजी तैयार हो गये। कुछ देर वह भी जागने लगे। वैसे हमारे स्वयंसेवकों ने बड़ा सक्रिय भाग लिया। इसी का फल था कि पड़ोस के मुहल्ले के मुसलमान शैतानी न कर सके। जब दंगे समाप्त हो गये तो यही तिवारीजी कहने लगे कि हिन्दू-मुस्लिम दंगे तुम्हीं लोग कराते हो। तुम्हीं लोग मुसलमानों के खिलाफ वातावरण बनाते हो। अब देखो रंजन, कुछ नही करते तो आफत, कुछ करते हैं तो आफत।'

ज्ञान एक क्षण को रुका फिर बोलने लगा, 'यहीं समाप्ति नहीं हो जाती। मैं प्रभात शाखा के एक मुख्य शिक्षक को नित्य ४।। बजे प्रातः जगाया करता था। एक दिन शाम को बता न सका कि मैं जगाने न जा सकूँगा। मुझे रात को बुखार हो आया था। तुम संघ का अनुशासन जानते ही हो। बुखार की ही स्थिति में जाकर उस कार्यकर्ता को जगाया। बड़ा जोर का जाड़ा पड़ रहा था। उस मकान के ही एक फ्लैट मे तिवारीजी रहते थे। उनकी पत्नी ने ऊपर से एक बाल्टी पानी मेरे ऊपर फेंक दिया, यह कहते हुए कि रोज-रोज सवेरे नींद तोड़ देते हो। चढ़े बुखार में भीगा, वह भी जनवरी के महीने में। निमोनिया हो गया था।'

× × प्रियम् उदास रहने लगी। अब लालो मुझसे पढ़ने आती तो प्रियम् पहरा न लगाती। मेरे मन का विद्रोह भी गलने लगा। अब मैं लालो

को न छेड़ता। पढ़ने में और भी अधिक दत्तचित्त रहने लगा।

पुस्तकों में जितना अधिक डूबने लगा, मन में ब्राह्मणत्व उतना ही अधिक जोर मारने लगा। प्रबल इच्छा होने लगी कि अपनी सारी शक्ति समाज के उत्थान में लगा दूँ, किंतु कैसे ?

कई बातों में मैं ज्ञान से सहमत था।

कई बार कानपुर आता-जाता रहा हूँ। स्टेशन से परेड जाने वाली सड़क पर मैंने मुसलमानों का जो रूप देखा है, वह सारे देश के मुसलमानों की बानगी प्रस्तुत करता है। भयंकर चेहरे, अतिरिक्त लाल या सफेद ओठ, दाढ़ियाँ, लुँगियाँ—विचित्र-सा दृश्य। अनेक होटल; मेजों पर सुराहियाँ; मुसलमान भोजन कर रहे हैं। सभी होटलों में 'रियासत' जैसे कट्टर भारत-विरोधी अख़बार रखे हुए हैं। रेडियो की सुई पाकिस्तान पर लगी हुई है। ये लोग वैसे ही इतने संकुचित कि कुरान और मुहम्मद को छोड़ और कुछ नहीं मानते और अब इन्हें हर प्रकार से पाकिस्तान की ओर मोड़ दिया गया है। जब तक ये अज्ञान रहते हैं कट्टर मुसलमान रहते हैं। जब इन्हें अपने मजहब का खोखलापन ज्ञात होता है, तो ये करें भी तो क्या करें, हिन्दू इन्हें स्वीकार नहीं करते। तब ये कम्यूनिज्म की ओर आकर्षित होंगे। हर तरह से भारत विरोधी, हर तरह से हिन्दुओं के शत्रु।

कहीं वर्षा हो रही हो और कहीं किसी पुरखे ने एक बच्चे को छाता दे दिया हो। अब वर्षा समाप्त हो गयी, चाँदनी निकल आयी हो और वह बच्चा छाता लगाये हुए दूसरों के पीछे डण्डा लेकर पड़ गया हो और विवश कर रहा हो कि तुम भी छाता लगाओ। वैसा ही हाल मुसलमानों का है। एक स्थिति से सुधार के लिए मुहम्मद साहब ने उन्हें इस्लाम का छाता दे दिया। उनके संदेश अरब के रेगिस्तान और वहाँ के उजड्ड निवासियों के लिए कुछ काल के लिए सत्य थे। भारत की शस्य-श्यामला भूमि और दार्शनिक जाति के लिए तो उनके कथन बच्चों की बहक जैसे हैं। मुहम्मद साहब का मूल्य कम नहीं। वे आदरणीय हैं। किंतु किसी भी महापुरुष के वचनों को सबके ऊपर हर समय लादा नहीं जा सकता।

मुसलमान खुद चाँदनी रात में छाता लगाकर चलें, हमें कोई आपत्ति

नहीं, किन्तु वे किसी को विवश नहीं कर सकते कि तुम भी छाता लगाओ।

दूसरी बात यह कि उन्हें पाकिस्तान से विमुख करना होगा। धार्मिक स्वतंत्रता के नाम पर अब काजी-मुल्लों को भड़काने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। ये काजी मुल्ले शताब्दियों से अनजान मुस्लिम युवकों को उकसाते आये हैं। ये आज भी सक्रिय हैं। न होते तो बीच-बीच में भारत-व्यापी आन्दोलन कैसे हो उठते ? किताब-कांड ने सारे भारत में एक साथ कैसे उग्र-रूप धारण किया। कानपुर में सन्तिया-कांड हुआ, लखनऊ रेडियो बोल भी न पाया और पाकिस्तान रेडियो ने कानपुर में अवाम की बगावत का एलान कर दिया। पाकिस्तान को किसने खबर पहुँचायी और कैसे ? क्या यह विचारणीय नहीं है ?

अब केवल रक्षात्मक दृष्टिकोण काम न देगा।

× × प्रियम् चाय ले आयी। अब उसके चेहरे पर पीलापन बढ़ रहा था। आँखें सदैव सजल सी रहतीं। इतने दिन तक तरह-तरह के विरोधी-भावों में डूबे रहने के कारण मैंने उसकी ओर देखा ही नहीं था। बाँह पकड़कर पास बिठा लिया। उसकी ठुड्डी उठाकर धीरे से पूछा—

'तुम किसकी हो रानी ?'

'किसी की नहीं।'

'किसी की भी तो !'

'भगवान् की।'

उसकी आँखें बह चलीं। मैंने उसे छोड़ दिया, तो भगवान् को चाय पिलाओ। फिर ध्यान आया मैं अन्याय कर रहा हूँ। आँचल से आँसू पोंछ दिये। मैंने उसे कुछ ऐसी आश्चर्य-जनक बातें बतानी शुरू कीं कि वह मान-अपमान भूलकर ध्यान से सुनने और प्रश्नोत्तर करने लगी। मैंने उसे किसी तरह 'बिराज बहू' देखने के लिए राजी कर लिया।

आकाश में बादल छा गये थे। हम जैसे ही रिक्शा से उतरे पानी बर-सने लगा। छाता खोलकर दोनों पर लगा लिया। हम दोनों सटे हुए चल रहे थे। मैं कह रहा था, 'जल्दी चल। भीतर पहुँच चलें।' यद्यपि नीचे-नीचे पैरों की ओर उसकी साड़ी की कोर भीग रही थी, किन्तु उसे इस प्रकार

एक साथ छाता के भीतर झमझमाते हुए मेह के बीच चलना बड़ा अच्छा लग रहा था। मेरे कन्धे से सटकर वह तिरछा देख मुस्कुरा उठती, किंतु जल्दी न चलती।

उसे 'विराज बहू' पिक्चर बहुत पसन्द आयी। हम जैसे ही घर आये, उसने दोनों पैर पकड़कर प्रणाम किया। मैंने कन्धे पकड़कर उठाकर सीने से लगाकर कहा—'मेरी विराज ! आयुष्मती हो।'

'न, सौभाग्यवती।'

''''घर में कई दिन बाद रौनक आयी। कमरा, कुर्सी, पुस्तकें सभी व्यवस्थित दिखायी पड़ने लगे। लालो भी आ गयी। दोनों हँसतीं-खिलखिलातीं काम करने लगीं। मैं संतोष का अनुभव करता हुआ पढ़ने में लग गया।

लालो अब भी प्यारी लगती, किंतु उसे देखकर मन विकृत नहीं होता। प्रियम् ने संदेह करना छोड़ दिया, तो मैं भी उसके विश्वास की कीमत करने लगा।

अब मेरे समक्ष चिंतन के दो ही विषय थे। अपना शोध-कार्य और देश की समस्याएँ। मास्टर तारासिंह और रिपब्लिक पार्टी के सिद्धान्त सुनकर चिंतित हुआ। मास्टरजी खिसियाकर खम्भा नोंच रहे थे। वे ईसाई-मुसलमानों को भी उन सुविधाओं के देने की बात कर रहे थे जो कि अछूतों को प्राप्त हैं। सवर्णों को छोड़कर वे सभी का संगठन करने निकल पड़े थे।

समाज में समानता लाने की बात की जा रही है, किंतु स्थिति विचित्र है। मैसूर में साठ प्रतिशत नौकरियाँ पिछड़ी जातियों के लिए सुरक्षित मानी गयी हैं। ब्राह्मणों को छोड़कर शेष सभी पिछड़ी जाति के बताये जाते हैं। शेष पैंतीस प्रतिशत ब्राह्मण-अब्राह्मण सभी के लिए हैं। जो प्रतिभा-योग्यता के बल पर आयेगा वही प्राप्त करेगा।

मुसलमानों को सुविधाएँ दे-देकर पाकिस्तान का फन्दा गले में डलवा लिया। अब अछूतों को सुविधाएँ दी जा रही हैं। एक समाजवादी नेता नेफा क्षेत्र में पिले पड़े हैं। वे वोट हथियाने के लिए नारा दे रहे हैं कि आदिवासियों के लिए साठ प्रतिशत नौकरियाँ सुरक्षित की जायँ। हर तरह से दबाव पड़ रहा है सवर्णों पर। सवर्ण सवर्ण को नष्ट करने के लिए खड्ग-

हस्त हैं। सारा समाज वैदिक-परम्परा पर कुठाराघात कर रहा है। और तो और, ब्राह्मण ही आज अपनी जड़ें काट रहा है। विवेकानन्द ने कहा था समाज में समानता तभी लायी जा सकती है जब कि चण्डाल भी ब्राह्मण के स्तर तक उठा दिया जाय, न कि ब्राह्मण भी चण्डाल बनाया जाय।

आज की सरकार और नेता विवेकानन्द के कथन को उलट रहे हैं। सबका चण्डालीकरण हो रहा है।

अठारह

बड़े दिन की छुट्टी के साथ-साथ साले साहब ने कुछ छुट्टी अपनी ओर से मिला ली। इस प्रकार वे बीस-पच्चीस दिन के लिए घर जाने के लिए तैयार हुए।

प्रियम् भी जाना चाहती थी। मैंने जाने की स्वीकृति दे दी। प्रातः तड़के जाना था। प्रियम् ने कहा कि उसे साढ़े तीन बजे प्रातः उठा दिया जाय, तभी तैयारी पूरी हो पाएगी। मैंने उसे दिखाकर साढ़े तीन का एलार्म लगा दिया। किन्तु जब वह लेट गई तब मैंने साढ़े तीन के बजाय साढ़े चार का एलार्म कर दिया। सोचा था कि क्यों नाहक इतनी जल्दी जागकर परेशान होगी।

वह अपने कपड़े-लत्ते ठीक कर रही थी। मैंने पूछा, 'क्या सहायता करूँ ?' बोली, 'चुपचाप बैठे रहो—मेरे सामने, बस।'

फिर आँसू-भरकर बोली—'तुम्हारे बिना कैसे रहूँगी ?'

'जैसे अभी तक रही थीं।'

'अब और बात है।'

सामान बाँधने के बाद ब्लेड लेकर मेरे पैरों के पास बैठ गयी—'लाओ नाखून काट दूँ, तुम्हारी तो आदत है, काटते नहीं।'

सब काम समाप्त होने पर समझाने लगी कौन चीज कहाँ पर रखी है।

गृहस्थी सम्बन्धी बहुत से आदेश दिये गए। [दूध पीते रहने की कसम दी गई। रात को सोते समय स्टूल पर पानी रखने की भी कसम दी गई। प्यास लगी रहने पर भी मैं अपने हाथ से पानी नहीं पीता हूँ, इसलिए न !

बहुत कहने पर वह ग्यारह बजे सोई। आज बड़े मनोयोग से पैर दाबे गए। सिर में उँगलियाँ घुमायी गयीं। मैं सो गया। एकाध बार मैंने सिसकियाँ भी सुनीं, किन्तु मैं सोता रहा।

प्रातः एलार्म बोला, सभी उठ गए। वह बिगड़कर बोली, 'तुमने धोखा दिया है। अलारम साढ़े चार का कर दिया। अब मैं कैसे तैयारी कर सकूँगी।'

'परवा न करो, मैं अभी तैयारी कराये देता हूँ।'

मैंने झट स्टोव जलाकर पानी चढ़ा दिया ताकि वह गरम पानी से हाथ मुँह धोए और नहाए। उसका बिस्तर होलडाल में भर दिया। पूजा की सामग्री और रामायण के बिना एक दिन भी नहीं चल सकता, उसे भी उस के बक्स में रख दिया।

वह झाड़ू लिए सारा घर साफ करती घूम रही थी। डाँटकर कहा—'नाहक क्यों देर कर रही हो ?' उसने नहीं सुना। झाड़ू लगाई, कुर्सियाँ साफ कीं और गीले कपड़े से सारे घर का फर्श पोंछ दिया, तब स्नान करने गयी।

वह सिर झुकाए आलता लगाने लगी। लगाने के बाद आलता को प्रणाम किया।

अब सिर उठाकर मेरी ओर देखा—आँखें लाल थीं और खूब सूजी हुईं, चेहरा सफेद पड़ गया था। मैं हिल उठा। 'यह क्या ! यह क्या !!'

'तुम मुझसे बोले नहीं, रात-भर रोई हूँ।'—कहते ही वह फफक उठी। उसे कन्धे से लगा लिया। मेरे भी नेत्र गीले हो गए।

'चलते समय मुझसे नाराज तो नहीं हो ? मुझे माफ कर देना।'

मुझसे उसने कुछ लिफाफे माँगे, दे दिए। बोली, 'अपना पता लिख दो।' वह भी लिख दिया। बोली, 'चलो स्टेशन भेज आओ।' तैयार हो गया। चलते समय मेरे पैर छुए।

साले साहब रिक्शा ले आए। हम दोनों रिक्शा में बैठे। साले साहब सायकिल पर सवार हुए। मार्ग भर वह कन्धे से सटी सिसकती रही।

ट्रेन में बैठ जाने पर उसके स्टैण्डर्ड की कई पत्रिकाएँ खरीदकर दे दीं। सीटी हुई। गाड़ी चली। उसने खिड़कियों से बाहर मुँह लटका लिया। आँसू बह रहे थे, उन्हें अपने भाई और सहयात्रियों से छिपाना चाहती होगी।

मैं सायकिल लेकर लौटा। रास्ता साफ नहीं दिखाई पड़ रहा था। अपने आप पैर पैडल घुमा रहे थे। मन न जाने कहाँ उड़ रहा था।

पलंग पर लेट गया। देर से नहाने उठा। नल के पास प्रियम् के माथे की टिकली दीवाल में चिपकी हुई थी। मैंने उसे हटाया नहीं। बरामदे में डोरी पर ब्लाउज और चोली सूख रही थी। जिस स्थान पर बैठकर सींक में रुई लगाकर आलता लगाया था, वहाँ वह सींक अभी भी पड़ी थी। उतनी जगह भी लाल थी। उसके पैर की उँगलियों के लाल निशान भी बने हुए थे। मैंने दो-चार दिन तक वहाँ झाड़ू नहीं दी।

दोपहर को उसकी बनाई हुई पूड़ियाँ खाकर पलँग पर लेट गया। तकिया खींचा तो उसके नीचे कुछ रखा जान पड़ा। कटी हुई सुपारियों से भरी हुई चाँदी की डिबिया थी। उसके भीतर कागज की एक चिट थी। लिखा था—'भोजन के बाद सुपारी जरूर खा लिया करना।'

आज यूनिवर्सिटी नहीं गया। चार बजे संध्याकाल के लगभग लाली प्लेट में कुछ ले आई।

'भाई साहब, बहनजी चली गयीं ?'

'चली गयीं, किन्तु अब तो बारह बजे हुए चार घण्टे हो चुके हैं।'

'तो मैं जीजा तो कह चुकी। अम्मा ने कहा है भोजन हमारे यहाँ कर लिया करें। यह गाजर का हलुआ है, अभी खा लीजिए हमारे सामने।'

'अम्मा से कह देना, मैं होटल में एडवांस दे चुका हूँ, अब भोजन तो वहीं करूँगा।'

'तो चाय पी जाया कीजिए।'

'यह भी न होगा।'

'तो मैं खुद नाश्ता दे जाया करूँगी । अच्छा खाइए ।'

भीतर जाकर वह एक गिलास में पानी ले आई। तब तक मैं आधा हलुआ उदरस्थ कर चुका था। उससे कहा—'तुम भी थोड़ा खाओ। अकेले तबियत नहीं होती।' उसने थोड़ा-सा लेकर खा लिया। मैंने अन्तिम ग्रास लेकर पानी पिया। उसे फिर अन्दर जाता हुआ देख कर पूछा—'कहाँ जा रही हो ?'

'पानी पीने ।'

'मेरे गिलास में अभी पानी शेष है ।'

'जूठा पीऊँ, हाँ नहीं तो ।'

'हाँ नहीं तो, किसका जूठा पिओगी ?'

मैंने मज़ाक में कहा था किन्तु वह तो सच ही पी गई ।

'लालो, आज साफ-साफ बताओ, प्यार करती हो या नहीं ?'

'नही करती, हाँ नहीं तो ।'

'सच बताओ ।'

'अच्छा मान लो, करती ही हूँ तो ।'

'तो मेरे पैर छूकर कहो ।'

'उस दिन मना क्यों किया था ?'

'तब तुम दूसरे भाव से पैर छू रही थीं। आज तो अन्य दृष्टिकोण से कह रहा हूँ ।'

मुझे लगा, वह घबड़ा रही है। धड़कन भी तेज जान पड़ी। वह जल्दी-जल्दी अपनी तश्तरी लेकर भाग गई। मैंने उसे रोका नहीं।

× × आठ-नौ दिन पश्चात् प्रियम् का पत्र आया। बिल्कुल साधारण-सा—'सपने में देखती हूँ, याद बहुत आती है, याद भुला न देना।' आदि। लगता है उसे कुछ नहीं सूझता तो यही पंक्तियाँ लिख दिया करती है, जिनका सच में कोई अर्थ नहीं होता। रामू को भी उसने ऐसे ही पत्र लिख दिया होगा। वह रामू की ओर मन से आकर्षित नहीं हुई होगी। स्त्री सुलभ सहज कौतुक-वश जानना चाहती होगी कि पत्र का लेखक रामू ही है या और कोई।

इस बीच में लालो दो-एक बार नाश्ता दे गई थी। मैंने उससे फिर कभी आत्मीयता के साथ बातचीत नहीं की।

आज फिर कुछ लेकर आई। तश्तरी मेज पर रखकर मेरे सामने खड़ी रही। जैसे सारी शक्ति एकत्र कर कुछ करना चाह रही हो। उसका सिर झुका, दोनों लम्बी चोटियाँ मेरे पैरों पर झूल गयीं। उसने मेरे पैर छुए थे। मैंने आदरपूर्वक उसका सिर उठाकर कन्धे से लगा लिया। स्वर में अत्यधिक स्नेह भरकर कहा—

'आज तुमने आत्म-समर्पण किया है। आज से तुम पूरी तरह मेरी हो। हममें भेद नहीं रहना चाहिए। एक बात पूछूँ, सच बताओगी?'

'पूछो।'

'तुम्हें उस दिन किसने चूमा था?'

'किसी ने नहीं।'

'झूठ।'

'तुम्हारे सिर पर हाथ रखकर सच कह रही हूँ। बहन जी ने डाँटा तो मैं घबड़ा गई। तुम्हें प्यार करती थी। इसलिए मन के पाप के कारण घबराहट हुई और मैंने कह दिया कि हाँ तुमने चूमा है।'

'लेकिन वह तो कह रही थी कि तुम्हारे गालों पर दाँत का निशान था।'

'वैसा निशान तो मेरे जन्म से है, देखो न।'

सच ही तो निशान था। मैंने अपनी हथेलियों में उसके नन्हे-मुँह को लेकर उसी निशान पर अनेक असंख्य चुम्बन जड़ दिये।

मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई, जिद पूरी हुई।

प्रियम् पर बहुत ही अधिक रोष हुआ। उसने व्यर्थ ही बतंगड़ बनाकर मुझे लांछित किया। मुझ पर पहरा लगाया। प्रियम् को भी दण्ड दे चुका था। मेरी दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी हुईं। अभी सन्तोष नहीं था। जिस बात का झूठा लांछन लगाया, अब वही करूँगा।

'लालो, सच पूछा जाय, तो मैं तुम्हें इस तरह कभी भी प्यार नहीं करता। तुम झूठ बोली थीं, मेरी स्त्री ने भी मुझ पर झूठा लांछन लगाया

था। उसी का बदला लेने के लिए मैंने तुम्हारे सामने प्यार का पिंजड़ा डाला था। तुम फँस गईं और पूरी तरह।'

लालो ने घबड़ाकर तथा खिसियाकर मेरी ओर देखा।

मैंने कहा—

'घबड़ाओ नहीं।

'तुम्हें फँसाने के बाद मैं देखता हूँ कि उस पिंजड़े में तुम्हारे साथ मैं भी बन्द हूँ।'

'तुम झूठ तो नहीं कहते ?'

'नहीं, रानी !'

मेरे जलते हुए अधर उसके मधुर अधरों पर छा गए। उसने चरमसुख में पलकें मूँद लीं।

'बस जाओ।'

उसके जाने पर मुझे लगा मेरे अधर कलंकित हुए हैं। अब गर्व के साथ किसी के सामने न कह सकूँगा कि मैं एकदम निष्कलंक हूँ। बड़ा अपराधी-सा महसूस कर रहा था।

अपने को भुलाने के लिए एक अमेरिकन उपन्यास पढ़ने लगा। नायक के प्रति घोर घृणा उत्पन्न हो रही थी, फिर भी उसके वर्णन बड़े रोचक और चटपटे थे। पढ़ने पर मन में संघर्ष था। विवेक कहता—यह पाप है, मन कहता जीवन का परम आनन्द तो यही है।

जिस समय मेरे मन में भयानक संघर्ष चल रहा था, सम्बल पाने के लिए प्रियम् को पत्र लिखा—

प्राण,

तुम जब से गयीं, पैर टूटते रहते हैं। पैर दबाने की अच्छी आदत डाल गयी हो। तुमने मेरे विद्रोही मन को अपनी सेवाओं से जीत लिया है। रानी, मेरे भूखे मन को भी संतुष्ट करो। मैं तुम्हें शिक्षित और कलामयी देखना चाहता हूँ। संगीत का अभ्यास तुम न चला सकीं। अब कोई परीक्षा ही दे डालो। मैं आशा करता हूँ तुम अपने मन को पक्का करके आओगी।

यदि तुम अपने में सुधार न करोगी तो मेरा मन यहाँ-वहाँ भटकेगा।

तुम्हारा प्रियमेश,
रंजन।

'''सोता, जागता, पढ़ता, नहाता, खाता—कुछ भी करता लालो मन-प्राण में छाई रहती। मैंने उसे अपने घर आने को मना कर दिया। मैं अपना अधिक पतन नहीं चाहता था। लालो के घर से महरी नाश्ता दे जाने लगी। लालो कभी-कभी महरी के हाथ अपनी कापी जँचवाने के लिए भेज देती। कापी जँचवाने का बहाना था। उसमें पत्र लिखा रहता था। प्रायः ऐसी बातें रहतीं—

'तुम बड़े स्वार्थी हो। उस दिन बोले, बस, जाओ। खुद प्यास बुझा कर कह देते हो जाओ। रात को जब ठंडी हवा चलती है तो नींद नहीं आती। रजाई में चारों ओर से लिपट जाती हूँ तब भी लगता है कि चारपाई सूनी है। मैं अँधेरे में टटोलती हूँ, तुम तो नहीं हो। कल रात को मेरी बड़ी इच्छा थी कि हम एक तकिया पर सोये होते।'''आदि

पत्र पढ़कर नशा सा छाने लगता, किन्तु उत्तर में मैंने कभी दो पंक्तियाँ भी न लिखीं। उसके पत्रों में विह्वलता बढ़ती गई। नारी जब एक बार सीमा तोड़ देती है, तो फिर उसे बहाव का ध्यान नहीं रहता।

इस बार महरी आई तो गिड़गिड़ाने लगी, 'बाबू, कुछ रुपया उधार दो। बड़ी मुसीबत में फँस गयी हूँ।'

पूछा—'क्या बात है ?'

'मनोहरा को पुलिस पकड़ ले गई है। कहती है कि इसने साइकिल चुराई है।'

'चुराई है या नहीं ?'

'सो तो बाबू नहीं मालूम, लेकिन इसकी सुहबत अच्छी नहीं है।'

मेरे पास रुपये थे ही कहाँ ? उसे पाँच रुपये दे दिए। इतना देने पर ही मुझे महीना काटना कठिन हो जाएगा।

महरा और महरी धर्म-प्राण हिन्दू हैं। हम उच्च वर्णीय हिन्दुओं ने

चोरी आदि की उपेक्षा की है। अब हम आधे ईसाई हो गए हैं, किन्तु ये लोग अभी भी हिन्दू हैं—आचार से। महरा नित्य गंगा-स्नान करता है, रामायण की चौपाइयों का पाठ करता है। व्रत-उपवास करता है। पूरी तरह से ईमानदार और मानव है। यह आया है गाँव से और इसके ऊपर प्रभाव है गाँव की पुरानी सभ्यता का।

उसका पुत्र मनोहर शहर में पैदा हुआ। गाली-गलौज़, मारपीट, गोली पतंग, जुआ, सिनेमा के वातावरण के बीच उसका बचपन पला। उसके सामने कोई आदर्श नहीं।

सरकार सेकुलरवादी है। पुराने जीवन-मूल्य खोद-खोदकर फेंके जा रहे हैं, नवीन आदर्शों की स्थापना नहीं हुई। पहले सारे समाज को धर्म के सूत्र से ग्रथित कर लिया गया था। वह सूत्र स्वयं छिन्न हुआ और सरकार ने भी छिन्न करने में कोई कसर नहीं उठा रखी।

फिर देश और समाज को एक सूत्र में ग्रथित कर व्यक्ति-व्यक्ति के चरित्र को कैसे उन्नत रखा जाय!

जिन देशों का अन्धानुकरण हमारे नेता कर रहे हैं, वहाँ कम-से-कम कट्टर राष्ट्रीयता तो है। वे राष्ट्र के नाम पर कोई भी बलिदान दे सकते हैं।

हमारे यहाँ राष्ट्रीयता पर जोर ही कहाँ दिया जा रहा है? राष्ट्रीयता के मूल-तत्व धर्म और संस्कृति की उपेक्षा हो रही है। इतना बड़ा भारत देश केवल एक धर्म-संस्कृति के सूत्र में शताब्दियों तक बँधा आया है।

आज यदि कोई धर्म-संस्कृति की बात करता है तो बिना सोचे-समझे नेहरू तथा आजकल के तथाकथित प्रगतिशील अखबार उसे सम्प्रदायवादी, प्रतिक्रियावादी और पता नहीं क्या-क्या कहकर ठुकराते हैं।

ज्ञान से भेंट हुई। वह बहुत ही उदास और बुझा हुआ था। वह बोला—'मैं तो बिल्कुल टूट गया हूँ। मैं पिछले १३ वर्ष से अपना सारा जीवन राष्ट्रीय-स्वयं सेवक संघ को अर्पित कर देश-सेवा कर रहा था। एक हौज को दस नल खाली कर रहे हों और एक क्षीण नल भर रहा हो तो वह कभी भर नहीं सकता। संघ देश के सभी लोगों को एक संस्कृति के

नाम पर संगठित कर राष्ट्रीयता-संचार का प्रयास करता है और दूसरे लोग ऐसा वातावरण बना देते है कि समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। अब मुझे भी विश्वास होने लगा है संसार कुत्ते की पूँछ है—यह सीधा न होगा।'

मैंने कहा—'आपने काफी दिन देश-सेवा कर ली। अब गृहस्थ जीवन-यापन कीजिए।'

'वही तो नहीं हो पायगा। गुरूजी के आदर्श और प्रेरणा से मैं भी सोचने लगा था कि मैं उन लोगों में से एक हो जाऊँगा, जो राष्ट्र को मजबूत करने के लिए नींव बन जाते हैं। इसलिए स्त्रियों के गाल चाटकर, हीन वीर्य बनकर कार्य नहीं करना चाहा। अब क्या करूँ, समझ में नहीं आता। उद्देश्य-भ्रष्ट होकर गृहस्थी में मुझे सन्तोष न मिलेगा। ऐसा बुझ गया हूँ कि लगता है रगों में खून नहीं। और रंजन, स्वार्थ की छूत धीरे-धीरे हमारे संघ की ओर भी आ रही है। संघ की सात्विकता से इसका संघर्ष होने लगा है।'

'तो अब आप क्या करेंगे ?'

'गुरूजी से मिलूँगा और स्वामी परमानन्द सरस्वती से।'

'कौन परमानन्द ?—देवकीनन्दन पाण्डे न ?'

'हाँ, वही। वे भी मेरी जैसी स्थिति में रह चुके हैं। वे भी इसी प्रकार संघ को जीवन दे बैठे थे और अब शंकराचार्य की शिष्य-परम्परा में संन्यासी हैं।'

···मैं संघ का स्वयंसेवक कभी नहीं रहा, किन्तु उसकी प्रगति, अनुशासन, सात्विकता और संगठन देखकर मुझे प्रसन्नता होती थी। वही एक संस्था है जो भाषा और प्रान्त से ऊपर उठकर सारे देश को एक सूत्र में बांधे हैं।···तो उसके भी कार्यकर्त्ता हारकर—टूटकर बैठते जा रहे हैं ?

ज्ञान मेरे लिए प्रकाश-स्तम्भ रहा है। विचारों में मैं उसका प्रतिबिम्ब रहा हूँ। उसकी हार से मैं निष्प्राण-सा हो रहा हूँ। मुझे भी लग रहा है कि संसार कुत्ते की पूँछ है। चाहे जितना सुधार करो यह ज्यों-का-त्यों रहता है।

फिर हमारी साधना, तपस्या, आदर्श सब झूठे हैं क्या ?

''''प्रियम् का पत्र मिला। लिखा था''''तुम जो चाहते थे, मुझमें न पा सके इसलिए तुम्हारा मन भटकता है—ऐसा तुमने लिखा, लेकिन यह सब झूठ है। तुम्हारे मन में मेरे आने से पहले ही कोई बसा हुआ था, जिससे मैं फूटी आँख नहीं सुहाती। क्यों मन भटकाते हो, पास ही तो चहेती रहती है। अब मैं कभी अपना मुँह नहीं दिखलाऊँगी। बड़े आये, क्या सुख दिया है विवाह के बाद ?'

ठण्डी साँस लेकर पत्र रख दिया। खिड़की में आकर बैठ गया। लालो अपनी छत पर खड़ी थी। देखकर मुस्करायी। मैंने उदास आँखों से एक बार देखकर सिर नीचा कर लिया।

मेज पर रखे मोटे पोथों पर एक बार हाथ फेर लिया। खोलने की इच्छा नहीं हुई।

कमरे में सुगन्ध भर गयी। इत्र, नये वस्त्र और नारी के शरीर की गन्ध से चौंककर देखा—लालो मुस्कराती हुई खड़ी थी।

'तुम क्यों आयीं ?'

'तुमने बुलाया था।'

'तुमने कैसे जाना।'

'अपने दिल से। तुम उदास क्यों हो ? बहिनजी की याद आ रही है ?'

उसके शरीर का क्वाँरा अल्हड़पन निमन्त्रित सा करता जान पड़ा, सरल काली आँखों की भाषा कुछ निवेदन कर गयी। मुझे लगा बसन्त का विकास, नयी कलियों का सौरभ सभी कुछ मेरे सम्मुख है। यदि मैं इस नवल-मधु का आकण्ठ पान करता हूँ तो अपनी अथवा समाज की क्या क्षति करता हूँ ? यही परम-सुख है, यही चरम तृप्ति है—कम-से-कम जीवन की कटुता के लिए मधुर भुलावा तो है ही।

मैं लालो के पत्रों का उत्तर नहीं दे रहा हूँ, किन्तु उसके पत्र निरन्तर आ रहे हैं। कल शाम के पत्र में उसने लिखा था''''मैं बहुत संयम करती हूँ किंतु बिना तुम्हें देखे चैन नहीं पड़ती। मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती। जानती

हूँ वासना पाप है, उससे दूर रहूँ फिर भी रात को कभी-कभी प्रबल इच्छा होती है कि तुम्हारी पतली बाँहों में बँधकर तुम्हारे सीने में खो जाऊँ।'

उसने जो चाहा था, वही किया। वह मेरी बायीं जाँघ पर थी, सीने में खोयी हुई। कालिदास की आदर्श नारी'''तन्वी, श्यामा, शिखर दशना, पक्व-बिम्बाधरोष्ठी, मध्ये क्षामा, चकितहरिणी प्रेक्षणा, निम्न नाभि'— मेरी पतली बाँहों में थी। उसकी अधखुली नशीली आँखें और मधु के कोष पतले ओठों को मैं प्यासी निगाहों से देख रहा था।

सभी आदर्श झूठे हैं, मृत हैं। जो सजीव है, सत्य है वह तो यही है जो मेरी गोद में है। मैंने उसके वक्ष में अपना सिर छुपाते हुए कहा'''लालो प्रिया, मैं तुम्हारे कण-कण से प्यार करता हूँ। ओह, तुम कितनी मीठी हो!'

हम पलँग पर बैठे थे, अकस्मात याद आया, प्रियम् कहा करती थी— 'मुझे पूरा विश्वास है मेरा पलँग हमेशा पवित्र रहेगा। मुझे हल्की सी ग्लानि हुई। मैं उसके विश्वास का आदर नहीं कर रहा हूँ। उसने भी तो मेरे अरमानों को बुरी तरह कुचला है। मैं प्रियम् के प्रति दयालु न हो सका, फिर भी पलंग पर न बैठा गया। लालो को धरती पर उतारकर मैं भी खड़ा हो गया। उसने कन्धे पर सिर रखकर अपनी कमल-नाल सी बाहें मेरे आस पास लपेटकर कहा'''बस कुछ नहीं, ऐसे ही एक क्षण खड़े रहो और कुछ नहीं।'

वह मुड़कर देखती चली गयी।

मेरे वस्त्रों में लालो की सुगन्ध भर गयी थी। कमरे के वातावरण में अभी भी उसकी देह-गन्ध का आभास था। किन्तु इन वस्त्रों को पहनकर मुझसे पलँग पर बैठते नहीं बना। मैंने कपड़े बदल डाले।

बड़ी बेचैनी थी। रात को देर तक सड़कों पर घूमता रहा। सवेरे उठा नहीं गया। आँखें चढ़ी हुई थीं, सिर में दर्द था। थर्मामीटर लगाकर जाना, बुखार है फिर लेट गया।

कल शाम को लालो को गोद में भरकर जिसे परम-सुख माना था, वह तो क्षणिक नशा-सा प्रतीत हुआ।

ज्ञान बुझ गया है, टूट गया है। लगता है मैं भी बुझ गया हूँ; टूट गया हूँ। त्यागी और संयमी ब्राह्मण बनकर समाज-सुधार करना चाहता था। वह भी न कर सका। और अब तो आदर्श ही मिथ्या लग रहा है। बड़े-बड़े त्यागी-संन्यासी चिल्ला-चिल्लाकर इसी धरती में समा गये। आज जीवन है कल नहीं रहेगा। क्यों व्यर्थ में सुधार का ढोंग करूँ ? तो क्या करूँ ? ऐसी कौनसी चीज है जिसमें अपने को भुला दूँ ? लालो भी तो निरुद्वेग शान्ति नहीं दे सकेगी।

मुँह में कड़ुआहट थी, शरीर में जलन और शिथिलता। पास ही कहीं रेडियो बज रहा था। बच्चों का कलरव सुनायी पड़ रहा था। सड़क पर दौड़ते हुए ताँगे आदि की ध्वनि भी आ जाती थी। दुनिया अभी भी चल रही थी, किन्तु उसमें क्या सच ही उल्लास है ? क्या मैं इस उल्लास में एक रस हो सकता हूँ ?

···आहट पाकर नींद खुली, लालो कमरे की सफाई कर रही थी। मुझे जगा हुआ देखकर पास आ गयी। तसले में कुल्ला कराने के बाद केतली से चाय का प्याला भर लायी। मैं धीरे-धीरे चुस्की लेने लगा।

'बीमार बने रहे और हमें बताया तक नहीं ?' लालो ने शिकायत की।

मैंने देखा प्रियम् वाले लिफाफे से पत्र निकला हुआ है।

'लालो, तुमने मेरा पत्र पढ़ लिया है।'

उसने सिर झुका लिया। मुझे बड़ी ठेस लगी। वह मेरे बालों में उँग-लियाँ घुमाने लगी। माथे पर गरम बूँद टपक पड़ी। मैंने उसकी उँगलियाँ माथे पर ही दबाकर कहा, 'रोओ मत, मुझे दुःख होगा।'

'तुम मुझसे हमेशा प्यार करते रहोगे ?'

'करता रहूँगा, किन्तु वासना से रहित होकर। मुझे लगता है कि वासना-पूर्ण प्रेम क्षणिक नशा है जो टिकाऊ नहीं होगा। यदि तुम प्रेम को अमरता देना चाहो तो संयम धारण करो। मैं भी चेष्टा करूँगा। अभी हमारा पूर्ण पतन नहीं हुआ है।'

'मेरे राज, अब मैं दूसरे की कैसे हो सकूँगी ? यही चाहती हूँ कि दूसरे की होने से पहले मेरी मृत्यु हो जाय।'

'लालो, जिस समय द्वार पर शहनाई बजती है, सभी प्रेमिकाएँ अपनी प्रतिज्ञाएँ भूल जाती हैं।'

उसने दृढ़ता से कहा—'नहीं।'

मैंने फीकी मुस्कान के साथ कहा''''अच्छा।'

लालो दोपहर को नमकीन साबूदाना बनाकर ले आयी।

× × मैं तीन-चार दिन में ठीक हो गया। दुर्बलता शेष थी। मेज पर पैर फैलाकर कुर्सी पर बैठा हुआ धीरे-धीरे गुनगुना रहा था—

मिटाने माता के सब क्लेश, हृदय में लिए अमर सन्देश,
नया युग करना है निर्माण, पुरानी नींव नया निर्माण।

किवाड़ जोर से खुले, आँधी की तरह आयी प्रियम्। कान में लम्बे चमकीले बुँदे झूल रहे थे। गालों पर सुर्खी आ गयी थी। लम्बी पलकों पर धूल के कण छाये हुए थे।

मेरे मुँह से निकला—'तु-तुम-तुम यहाँ ?'

'कहाँ बीमार हो, तुम तो गा रहे हो।'

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ मैं बीमार हूँ।'

'तार नहीं भेजा था ?'

'मैंने नहीं भेजा।'

'फिर किसने भेजा ?'

'लालो ने भेजा होगा।'

'उसे पता कैसे मालूम हुआ ?'

मैंने आँखें झुकाकर कहा, 'जब मैं बुखार में बेहोश था, उसने तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर पता देख लिया। गाँव में तार देर से पहुँचता है। जब तक तुम्हें तार मिला और तुम आयीं तब तक मैं साँड़ हो गया।'

प्रियम् दोनों हाथों से मुंह छिपाकर बिलख उठी—'मैंने तुम्हें कड़ी चिट्ठी लिख दी थी। मुझे क्षमा कर दो। तुम कितने कमजोर हो गये हो !'

वह मोढ़े पर बैठ गयी। मैं उठकर उसके मोढ़े के सामने धरती पर बैठ गया। उसके सिर को झुकाकर माथा चूम लिया। वह हड़बड़ाकर उठी, मुझे प्रणाम किया।

सारे घर में झाड़ू घूमने लगी। मुर्दगी दूर हुई। फिर नया जीवन दिखायी पड़ने लगा। मेरे लिए गरम-गरम दूध आ गया।

लालो के आने पर मैं घबड़ा गया। प्रियम् उससे नहीं बोली, केवल थोड़ा-सा मुस्करा गयी। थोड़ी देर बाद बरामदे में दोनों का कलरव सुना। मैंने थोड़ा-सा झाँककर देखा—दोनों एक ही तश्तरी में लड्डू रखकर खा रही हैं।

उन्नीस

मैंने निश्चय किया, जब तक मेरी थीसिस पूरी नहीं हो जाती, विदेशी उपन्यास नहीं पढ़ूँगा। पिछले महीनों में जो कुछ पढ़ा था, उसमें 'बेल आभि' का चरित्र मेरे मस्तिक में छा गया था।

प्रियम् के स्वभाव में कुछ अन्तर दिखायी पड़ा। उसने बताया भी कि माँ कह रही थी, 'अब तुम बहुत शान्त हो गयी हो।' मैंने पूछा, 'तब तुमने माँ से क्या कहा?' वह बोली, 'मैंने माँ से कहा सारी जिद और गुस्सा तो तुम्हारे दामाद को दे दिया है।'

मैं अपने अध्ययन में फिर दत्तचित्त हो गया। मुझे लालो अब वैसी प्रलोभनीय नहीं लगती। वह भी अब काम-विह्वल दिखलायी नहीं पड़ती। लगता है भावनाओं का भी परस्पर घात-प्रतिघात होता है।

प्रियम् को पुरानी शिकायत फिर जान पड़ने लगी। डाक्टर ने बताया कि इस बार इलाज तब करेंगे, जब प्रियम् को किसी जनाने अस्पताल में दिखा लिया जाय।

× × ज्ञान का पत्र आया। लिखा था—'गुरुजी से मिला, उन्होंने गृहस्थ-जीवन-यापन करते हुए सुधार कार्य का निर्देश दिया है। अब स्वामी परमानन्द से भी मिलने जा रहा हूँ। मुझे प्रतीत होता है अब रक्षात्मक दृष्टिकोण से काम न चलेगा। हिन्दुओं पर आक्रमण होता रहा है और वे

रक्षा करते-करते इतने सहनशील हो गए हैं कि आज वे मुर्दा कौम में शुमार किए जाते हैं। हमें आक्रामक नीति अपनानी होगी। जो कोई भी हमारी राष्ट्रीय-एकता को छिन्न करेगा, हम आगे बढ़कर उसके हाथ तोड़ देंगे। इसके पहले कि वह हमारी नारियों की प्रतिष्ठा भंग करने का संकल्प करे हम उनके सिर फोड़ देंगे। जहाँ-जहाँ हमारे देश में अराष्ट्रीय-तत्व अधिक संख्या में हैं, वहीं जाकर उनका गढ़ तोड़ना होगा। संघ ने कार्य करने की टेकनीक सिखा दी है। अब सोच रहा हूँ किसी ऐसे जंगली प्रदेश में जाकर कार्य प्रारम्भ करूँ, जहाँ ईसाई लाखों भोले और गरीब हिन्दुओं को भड़का-कर, धोखा देकर धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं। अथवा उन सीमाओं पर कार्य करूँगा, जहाँ खूँख्वार भेड़िये हिमालय की पवित्रता नष्ट कर रहे हैं।'

ज्ञान का यह दृष्टिकोण मुझे अच्छा लगा। पत्र प्राप्त करने के पूर्व मैं भी आक्रामक-दृष्टिकोण की बात सोचने लगा था। हाँ, अब हम देश की सीमाएँ घटने नहीं देंगे। अब हम देश के भीतर ही स्तान बनने की नौबत नहीं आने देंगे। जहाँ भी ये 'स्तान' बन रहे होंगे, हम उन्हें नष्ट करेंगे। सिनेमा-कंसेशन के लिए, चार पैसों के लोभ के लिए, अभिनेत्रियों की नंगी टाँगें देखने के लिए हुड़दंग मचाने वाले छात्रो, सावधान। तुम्हारे देश की अटल सीमाएँ चरमरा रही हैं।

× × इसी बीच लता के घर हो आया हूँ। वह घर पर अकेली मिली—कैथा खाती हुई। मुझसे उसने मूँगफली मँगाकर खायीं। बहुत-सी बातें करती रही। कई प्रकार से संकेत भी देती रही कि पूर्व-जीवन चल सकता है और इसीलिए मुझे अपना प्यार प्रकट करने का रास्ता सुझाने के लिए कविता लिखकर देने को कहा। मैंने घर आकर टूटी-फूटी कविता अवश्य बनायी, किन्तु कुछ सोचकर उसके पास नहीं भेजी। वह कविता हम दोनों के मध्य हुए अल्पकालीन व्यवहार को स्पष्ट करती थी।

कविता थी—

'बहुत दिनों के बाद
तुम्हारे पास
गरम-गरम रेशमी रजाई

ओढ़े ऐंठ रही मुस्कातीं
चुपके खट्टा कैथा खातीं
समझा···
कल ही तो ससुराल से आयीं
'एकोऽहं बहुस्याम' की
एक नयी सौगात भी लायीं।
हाय, बेचारा मरा बामरन,
'बैल दाऊ आर्ट ई पा'···
बालू की भुँजी
मूँगफली ऽ ऽ ऽ
············

छोड़ रजाई खिड़की पर तुम
'ठहरो, ठहरो, खोंचा वाले।'
'मेरे अच्छे-से तुम लादो
एक पाव सोंधी सी फलियाँ
पिसे नमक की दो दो पुड़ियाँ।'
छील-छीलकर कुछ तुम खातीं
एक्टिंग कर नरगिस निम्मी'
दृग मटकाकर बड़े यत्न से
कुछ दाने तुम मुझे खिलातीं।
फिर कटाक्ष के बाण फेंककर
स-आयास काँपते-स्वर में
बोलीं, बहुत याद आती थी,
तुम तो मुझको याद न करते।'
जाने क्यों सब लगा
अरुचिकर
कैथा खाना, फली चबाना
मटक-मटककर बात बनाना।

री परकीया,
मुझे याद आ रही स्वकीया
बाट जोहती पलक बिछाये
खड़ी झरोखे में जो होगी
नहीं चबाता मूंगफली
गन्दे दाने।
तुम्हीं चबाओ औ रौंथाओ
दूर हटाओ,
लो मैं जाता।

× × घर पर देखा प्रियम् के पास बैठी एक अमेरिकन महिला हिन्दी का एकाध टूटा-फूटा शब्द जोड़कर इशारों से कुछ समझाने की असफल चेष्टा कर रही है। प्रियम् घबड़ायी-सी बैठी है, वह कुछ नहीं समझ पा रही है।

मुझसे गुड-ईवनिंग और शेकहैंड कर धारा-प्रभाव अंग्रेजी में कह गयी —'हम विश्व-कल्याण और विश्व-शान्ति के उद्देश्य से सारे विश्व में घूम रहे हैं। सारी दुनिया में संघर्ष है, गुनाह । इससे बचने के लिए हम ईसू सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं।'

पन्द्रह मिनट तक सुनने के बाद मैंने कहा—'आप बड़ा परिश्रम कर रही हैं। मैंने प्रायः सड़कों पर आप जैसी अनेक गोरी महिलाओं को साईकल पर घूमते देखा है। आप लोगों के मन में बड़ी ममता है। एक बात बताइए।'

'पूछिए।'

'क्या भारत की समस्त समस्याओं का समाधान बाइबिल और ईसू के नाम से हो जायगा?'

'निश्चय सारे विश्व की समस्याओं का।'

'तो भारत की समस्या तो गरीबी है। इसका कैसे समाधान होगा?'

'न, यह सब नहीं। हम तो शान्ति की कामना—

'ठहरिए, यहाँ शान्ति के प्रचार की आवश्यकता नहीं। योरप में क्या

शान्ति स्थापित हो चुकी ? पहले रूस और अमेरिका में शान्ति स्थापित कराइए। दोनों देशों में बाइबिल खूब पढ़वाइए, क्योंकि युद्ध इन्हीं के कारण होगा। और नहीं तो चीन चली जाइए। वह हिमालय पर आक्रमण कर रहा है।'

'आप मुझे क्रिश्चियन तो नहीं समझ रहे हैं ? हम मिशनरी नहीं हैं। हम रिलिजन की शिक्षा नहीं देते, क्योंकि रिलिजन सभी—चाहे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई कोई भी क्यों न हो, शान्ति स्थापित नहीं कर सकता।'

'तो आपके महान् कार्य का आधारभूत सिद्धान्त क्या है ?'

'ईसा के सन्देश और बाइबल।'

'क्या खूब ? रामायण-गीता आदि आपने पढ़े हैं ?'

'नहीं।'

'तो यहाँ आपकी माया न चलेगी । हमारे ग्रन्थों में जो दर्शन और भक्ति आदि है, उसके सामने तो आपका कथन बच्चों की बकवास प्रतीत होता है। क्षमा कीजिएगा, भाषा आपकी बहुत सुन्दर है, आप भी कम सुन्दर नहीं हैं। एक बात और बताइए।'

'देखिए ईसा मसीह ने कहा—

'सुनिए। ईसा मसीह सन्त थे, उनका आदर करता हूँ। पहले मेरी बात का उत्तर दीजिए। मेरी एक दाढ़ दर्द कर रही थी, उसे डाक्टर से उखड़वा दिया है। क्या आप उसे फिर नये सिरे से जमा सकती हैं ?'

'यह कैसे हो सकता है ? असंभव। हमारा यह कार्य नहीं है। हम तो विश्व-शान्ति स्थापित करने निकले हैं ?'

'किन्तु एक दिन आप गरीबों की बस्ती में मजमा लगाये हुए अपने करिश्मे दिखा रही थीं। आपने कई जन्म के गूँगे, बहरों और अन्धों का ईसा मसीह के नाम पर आनन-फानन इलाज किया था।'

'जिसे ईसा-मसीह पर विश्वास होता है, उसका इलाज हो जाता है।'

'क्षमा कीजिएगा, यह मक्कारबाजी मुझ पर नहीं चलेगी। हिन्दू-समाज में अन्ध-विश्वासियों का बाहुल्य है। वे आपके करिश्मे से प्रभावित हो जाते हैं और आप धर्म-परिवर्तन करने में सफल हो जाते हैं। ईसू के नाम से

इलाज होने लगता तो अमेरिका और योरुप में अस्पतालों की आवश्यकता न होती, क्योंकि वहाँ अधिकांशतः ईसा के ही विश्वासी रहते हैं। जिस जन्म-जात गूँगे के इलाज का आप नाटक खेल रही थीं, वह लड़का मेरे मुहल्ले का सेमुअल है और वह गूँगा है ही नहीं।'

महिला बड़ी चतुर थी। झट से मुस्कुराकर बोली—'तो मेरा क्या दोष, आपके ही देशवासी झूठे बनकर आते हैं।'

'दुःख तो यही है कि ये देशवासी डालर से खरीद लिये गये हैं, और न ये भारतीय हैं न सच्चे ईसाई। ये हैं अमेरिका आदि देशों के एजेंट और आप भी ईसा-मसीह और सच्चे ईसाइयों को कलंकित करती हुई अपने करिश्मों से भोली जनता को आकृष्ट कर ईसाई बनायेंगी और ये ईसाई होंगे देश के शत्रु—पंच-मार्गी।'

महिला उठ खड़ी हुई, बोली—'आपको भ्रम है।'

'खैर, मैं भारतीय हूँ—हिन्दू हूँ। अतिथि का सत्कार हमारा धर्म है। कड़ी बात कह दी हो तो क्षमा चाहता हूँ। पान खाकर जाइए।'

प्रियम् ने जब तक पान दिया, कुछ और इधर-उधर की बातचीत हुई। मैंने कहा—

'आज का यह मिलन बड़ा प्रिय था। आपकी बातें आपके ही समान रोचक हैं।'

महिला आशान्वित होती बोली—'आप हमारी संडे मीटिंग में आइए। हमारे यहाँ कुछ ऐसी व्यवस्था भी है कि जो लोग विश्व के अन्य देशों में हमारा काम देखना चाहते हैं, हम उनके जाने का प्रबन्ध कर देते हैं।'

'क्षमा कीजिएगा, मैं उन गद्दारों में नहीं हूँ, जो विदेश-भ्रमण के लोभ में अपने देश की संस्कृति और धर्म की उपेक्षा करते हैं।'

एक क्षण रुककर मैंने फिर कहा—

'प्रिय महोदया, अपने देश जाकर मेरी एक बात सुना देना।'

'क्या ?'

'यह कि भारत में सभी बुद्धू, अन्ध-विश्वासी और स्वार्थी—सेकुलर-वादी नहीं हैं। यहाँ कुछ ऐसे लोग भी हैं जो कट्टर राष्ट्रवादी हैं। यदि मेरे

जैसे लोगों के हाथ में शक्ति आगी तो घुटने-टेक नीति नहीं चलेगी। हमारा पहला काम होगा आप लोगों को भारत से खदेड़ देना।'

'आप शायद आर० एस० एस० के हैं ?'

'हम केवल कट्टर भारतीय हैं। अच्छा, कोई बात नहीं। आपके लिए हम भारतीयों के द्वार सदैव खुले हैं।'

मेम साहब चली गयीं।

....उफ़, भारत में जो लाख-लाख गरीब, आदिवासी और अछूत ईसाई बनाये जा रहे हैं, उनमें अराष्ट्रीयता भी भरी जा रही है। हमारे देश की गरीबी और मूढ़ता का दुरुपयोग कर रहे हैं विदेशी।

नहीं, नहीं, अब यह न हो सकेगा।

रक्षात्मक-नीति अब नहीं, आक्रामक बनना ही होगा।

देश की संस्कृति का आह्वान है।

भारत की अखंडता मुझसे भी कुछ अपेक्षा रखती है।

बुद्ध, शंकर, दयानन्द और विवेकानन्द के सन्देश को अपने रक्त-प्रवाह में अनुभव कर रहा हूँ।

'कटिबद्ध हो। अग्रसर हो।'

बीस

जनाने अस्पताल के बाहर बैंच पर बैठ गया। प्रियम् भीतर चली गयी। बैंच पर महाराष्ट्रीय शैली की धोती पहने एक सज्जन बैठे थे। परिचय-आलाप हो जाने पर ज्ञात हुआ कि ये महोदय संघ के स्वयंसेवक हैं और इन्होंने चार वर्ष के लिए अपनी दैनिक सेवाएँ संघ को अर्पित कर दी हैं—अर्थात् चार वर्ष के लिए प्रचारक होना स्वीकार कर लिया है। मैंने कहा—

'तो नये लोग निकल रहे हैं ?'

'हाँ, कुछ पुराने बैठ रहे हैं।'

'कोई बात नहीं, फिर कुत्ते की पूँछ टेढ़ी नहीं रहेगी। वह बार-बार टेढ़ी होगी, तो बार-बार सीधी भी की जायगी।'

'समझा नहीं।'

'महापुरुषों ने कहा है कि कुत्ते की पूँछ को चाहे जितना सीधा करो, उसे छोड़ देने पर वह फिर टेढ़ी हो जायगी। इसी तरह यह संसार है, चाहे जितना सुधार करो, यह ज्यों-का-त्यों रहता है।'

वे सज्जन हँस पड़े। वे अपनी बहिन को दिखाने ले आये थे।

मेरे पास एक नन्हा-सा बालक खड़ा हो गया। मैला-मैला गरीब किन्तु प्यारा सा। अवश्य ही मुसलमान होगा। अभी यह मुसलमान-हिन्दू का भेद नहीं जानता। धीरे-धीरे बड़ा होगा, देश के धर्म को छोड़कर विदेश के धर्म से इसका नाता जोड़ दिया जायगा और तब यह कितना दुर्दम हिन्दू-विरोधी बन जायगा।

भीतर से बुर्का-धारिणी पुत्र-वत्सला माँ विह्वल होकर निकली और बालक को पकड़ ले गयी। हिन्दू-अहिन्दू सभी में पुत्र-प्रेम है। जहाँ पुत्र-प्रेम है, वहाँ क्या मानवता नहीं हो सकती ?

एक ईसाई युवती भीतर से निकली। बाहर खड़ा हुआ एक व्यक्ति उसकी बगल में आकर चलने लगा। युवक ने धीरे से कुछ कहा। युवती ने तिरछी दृष्टि से देखकर मुस्कुरा दिया।

परिवार की आधार-शिला यह लाज-भरी प्यारी-प्यारी चितवन क्या हिन्दू-अहिन्दू सभी में नहीं है और जब तक यह जीवित है, तब तक क्या मानवता मर सकती है !!

प्रियम् बाहर निकल आयी। हाथ में एक स्लिप थी।

रिक्शा किया। साथ-साथ बैठते समय मैंने उसके चिकोटी काटते हुए पूछा—'क्या है ?'

'कुछ नहीं।'—उसकी नजरें झुक गयीं, उसी तरह जिस तरह अभी-अभी एक ईसाई युवती की झुकी थीं।

'मैं सब जान गया।'

'क्या ?'

मैंने उसके हाथ की स्लिप में रोग के नाम के आगे लिखे शब्द पर उँगली रखकर मुस्कुरा दिया। धीरे से पूछा, जिससे कि रिक्शावाला न सुन सके—'कितने दिन से ?'

'दो मास से ?'

मैं पुलक उठा। प्रियम् लजाकर कभी-कभी तिरछी दृष्टि से देख लेती, फिर मुस्कुरा जाती।

भीगी अंकुरित-धरती, उमड़ती हुई घटाओं, नयी नयी कलियों में—सृष्टि के कण-कण में—मुझे नन्हे शिशु के अस्तित्व का भास होने लगा। संसार नश्वर नहीं है, वह नित्य नया रूप धारण करता है। मैं मृत्युंजय हो गया हूँ। मैंने बुढ़ापा और मृत्यु पर विजय पा ली। मैं नयी शक्ति और नूतन विकास के साथ उदित होने जा रहा हूँ। मेरी विकास-परम्परा शाश्वत रहेगी।

हम एक स्वच्छ जलपान-गृह के सामने रुक गये।

'प्रियम् ! आज तो तुम्हारा मुँह मीठा कर दूँ।'

भीतर जाकर कुर्सियो पर बैठते ही एक बेहद फूहड़ गीत सुनायी पड़ा। हम कुर्सियाँ छोड़कर उठ आये। बैरा दौड़ता हुआ आया—

'साहब, क्या बात है ?'

'जिस होटल में गन्दे गाने चला करते हैं, मैं पानी तक नहीं पी सकता।'

एक अच्छी-सी दुकान से बंगाली रसगुल्ले खरीद लिये। रेवा और लालो ने खूब उछल-उछलकर रसगुल्ले खाये। हमने बताया नहीं किन्तु पता नहीं इन दोनों ने रहस्य का भण्डाफोड़ कैसे कर लिया।

× × ×

···ज्ञान का पत्र आया—'स्वामी परमानन्द ने भी गृहस्थ-जीवनयापन का आदेश दिया है। उन्होंने प्रेरणा दी है—गृहस्थ-जीवनयापन करते हुए भील कोल आदि असभ्य जातियों के मध्य वैदिक संस्कृति का प्रचार करो। मैं इसी को चरितार्थ करने के लिए सन्नद्ध हो रहा हूँ अथवा नेफा-क्षेत्र की ओर बढ़ रहा हूँ जहाँ कि राष्ट्रीय-संकट की संभावना है।'

···प्रियम् से थोड़ी रूठारूठी चल रही थी। सच तो यह है कि अब

हम झगड़ते ही नहीं थे।

प्रियम् ने किसी तरह रसोई में एक चिरौटा पकड़ लिया था। वह उसे रँगती जाती थी और छिप-छिपकर मुझे देखकर दुष्टता के साथ मुस्करा पड़ती थी। रँगते-रँगते बोली, 'ठीक से रँगने नहीं देता, बड़ा जिद्दी है।'— मुँह घुमाकर मुस्कराने लगी।

मैं समझ गया, मेरे ऊपर आक्षेप कर रही है। मैंने उसकी ठुड्डी पकड़कर कहा—'जब तेरा चिरौटा आये तो अच्छी तरह रंग लेना, वह जिद्दी न होगा।'

वह चिरौटा छोड़कर खड़ी हो गयी। चिरौटा फुर्र से पर झाड़कर उड़ गया।

* * *

···मैंने ज्ञान को लिखा—अपने अनागत शिशु की शपथ लेकर कहता हूँ कि पूर्णतः राम के चरित्र का पालन करूँगा। सदाचारी व्यक्ति चाहे जिस जाति का हो, मैं उसके लिए फूल-सा भी कोमल रहूँगा; दुराचारी चाहे जिस जाति का हो, मैं उसके लिए कुलिश-सा कठोर बनूँगा। आप कार्य प्रारम्भ कीजिए। आपका अनुसरण करने को प्रस्तुत हूँ।

* * *

···नन्हे शिशु को लेकर प्रियम् कह रही है, देखा—'इसके बाल, भौंहें और आँखें बिल्कुल तुम्हारी तरह हैं। तुम्हारे कान में जन्म से छेद हैं और इसके कान में भी हैं।'

'प्रियम्, तुम कितनी भी सफाई दो, मैं नहीं मानूँगा कि यह मेरा बच्चा है। जाने कहाँ से उठा लायी हो। न जाने किस गँवार का है।'

प्रियम् चिढ़ जाती है। वह बच्चे को गाल से सटाकर चल देती है। कहती जाती है—'सच किसी गँवार का ही है।'

* * *

···चम्पा-फूल की गन्ध अधिक सूँघ जाने के कारण सेन गुप्ता महाशय मेडिकल कॉलेज में पड़े हुए उपचार करा रहे हैं। किसी गुप्त रोग से पीड़ित है।

× × कल ही तो मैंने लालो को इठला-इठलाकर सड़क पर आते हुए देखा था। क्रीम-पाउडर-लिपिस्टिक का शृंगार, अधखुला ब्लाउज, नाइ-लोन की पारदर्शी साड़ी, कानों में चमकते हुए बुन्दे····अरे प्रियम्, ओ प्रियम् ! तुम्हारे बुन्दे कहाँ हैं ?

'लालो ले गयी।' प्रियम् ने मुस्कराकर बताया।

'क्यों ?'

'आज वह देखी जायगी। माँगे के गहनों से शृंगार करेगी।'

'तो वह अभी-अभी अपनी होने वाली ससुराल गयी है ?'

'हाँ, वहीं।'

'प्रियम्, यदि मैंने तुम्हें विवाह के पूर्व देखना चाहा होता, तो क्या तुम ऐसे मेरे घर आतीं ?'

'हाय राम, मेरे घर वाले कभी तैयार न होते। चाहे तुम शादी भले न करते।'

× × सोच रहा हूँ अभी तो शहनाई भी नहीं बजी।

* * *

× × दीनू मिश्र का ब्राह्मणपन पथरा गया है, जड़ हो गया है। उसमें नई जान फूँकने की आवश्यकता है। रमरतिया और मनसुखा आर्य-संस्कृति के पावन संस्कारों से वंचित होकर नारकीय-जीवनयापन कर रहे हैं। उन्हें पवित्र संस्कार देकर पांक्तेय बनाने की आवश्यकता है।

अब मेरा पथ प्रशस्त है। कोई लालो आकर अब मृग-तृष्णा जाग्रत नहीं कर सकती। लालो की ओर से मैं बिल्कुल निश्चिन्त हूँ।

* * *

× × मेरे एक बाल-सखा कानपुर में अध्यापक हैं। उनके पास अपनी यह रामकहानी डाक द्वारा भेज कर पत्नी और बच्चे के साथ अज्ञात-प्रदेश को प्रस्थान कर दूँगा। शायद इस सभ्य संसार के लिए मेरा अस्तित्व ही नहीं रह जायगा। मैं उन जातियों को, जो असभ्य हैं (मैं उन्हें आदिवासी नहीं कहूँगा, क्योंकि आदिवासी तो हम सभी हैं) वैदिक संस्कार प्रदान करने के लिए जीवन-भर प्रयत्नशील रहूँगा। मेरी मृत्यु उन्हीं के बीच होगी।

मेरी पत्नी—मेरी छाया—सुख-दुःख की सहधर्मिणी मेरी प्रियम् मेरे साथ है। वह कुछ चिंतित होकर भी मेरा पूरा-पूरा साथ देने को तैयार है। मैं अपनी इसी प्रेरणा के बल पर खड़ा हो सका हूँ।

मेरा नन्हा-शिशु अपनी रेवा बुआ के हाथ का झँगुला पहने मुस्करा रहा है।

....पता नहीं मेरी इस कथा का क्या होगा! पता नहीं मेरा क्या होगा! !

हे अन्तर्वेद! हे गंगा-यमुना के क्रोड़ में स्थित भारत के हृत्पिंड! ! प्रणाम, शत-शत प्रणाम। विदा..........